योग का मार्ग

श्रीमाँ तथा श्रीअरविन्द की रचनाओं से संकलित

योग का मार्ग

श्रीमाँ तथा श्रीअरविन्द की रचनाओं से संकलित

श्रीअरविन्द सोसाइटी, जयपुर शाखा के सौजन्य से
श्री अरविन्द के 150 वीं जयंती के अवसर पर प्रकाशित।

योग का मार्ग

(श्रीमाँ तथा श्रीअरविन्द की रचनाओं से संकलित)

प्रथम संस्करण : 2023

© श्रीअरविन्द सोसाइटी, जयपुर शाखा

श्रीअरविन्द डिवाइन मैनिफेस्टेशन ऐण्ड एजूकेशन ट्रस्ट
सी-136, ए-2, गार्डेन व्यू, मंगल मार्ग
माथुर कॉलोनी, बापू नगर
जयपुर-302015
राजस्थान

प्रकाशक : श्रीअरविन्द डिवाइन मैनिफेस्टशन ऐण्ड एजूकेशन ट्रस्ट, जयपुर
मुद्रक : श्रीअरविन्द आश्रम प्रेस, पांडिचेरी

ई-मेल : sasjaipur@aurosociety.org
फोन : 9829255271, 9462294899

मूल्य : रु. 100

सूची पत्र

खोज करो क्यों आयी तुम?	... 5
या यथा माम	... 6
भगवान क्या?	... 7
भगवान के तीन पक्ष :	... 9
सृष्टि	... 11
भौतिक जगत का तात्पर्य	... 16
योग क्या है?	... 16
गीता में योग	... 20
पूर्ण योग	... 24
पूर्ण योग का लक्ष्य	... 29
पूर्ण योग का उद्देश्य	... 40
पूर्ण योग का स्वरूप	... 41
पूर्णयोग के अन्य उद्देश्य	... 45
पूर्ण योग अन्य योगों से भिन्न क्यों है ?	... 47
तीन चरण	... 51
योग क्यों ?	... 53
हमसे क्या अपेक्षा की जाती है ?	... 66
निर्णय अन्दर से आना चाहिये	... 67
योग के लिए तैयारी	... 77
श्रीअरविन्द अपने विषय में कहते हैं	... 78
एक दिन...	... 81

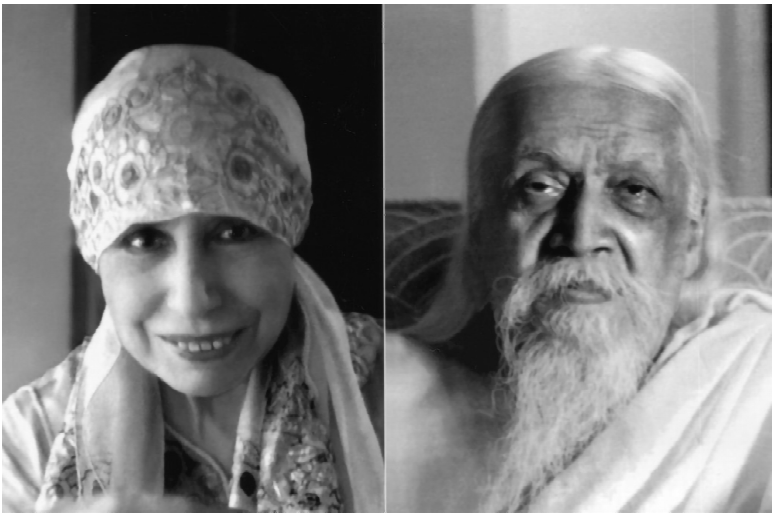

इस प्रयास में विजय तुम्हारे अन्दर की सच्चाई, तुम्हारी अभीप्सा की शुद्धता, तुम्हारी श्रद्धा के प्रज्वलित क्रोड़, तुम्हारे संकल्प और समर्पण की चरमता पर निर्भर करती है।

CWSA 12:373 — ***श्रीअरविन्द***

खोज करो क्यों आयी तुम?

वाणी ने उत्तर दिया : करो स्मरण क्यों आयी तुमः
खोज करो अपनी आत्मा, निज छिपे स्वयं को करो पुनर्प्राप्त,
नीरवता में करो तलाश भागवत अभिप्राय गहराइयों में अपनी,
तब मर्त्य प्रकृति को कर दो परिवर्तित दिव्य में।

खोलो भगवान का द्वार, करो प्रवेश उनकी भाव समाधि में।

अपने भीतर से हटा दो विचार जो परम ज्योति का दक्ष नक्काल है :
उसकी विस्मयजनक निस्तब्धता में मन को बना कर नीरव
जगा भीतर अपने उसके विराट सत्य को औ' कर ज्ञात औ' देख।
अपने भीतर से निकाल दो बुद्धि को जो तेरे आत्मन की दृष्टि पर डालता है परदा :

अपने मन की विशाल रिक्तता में,
देखेगी तू शाश्वत की देह विश्व में,
जानो उसे प्रत्येक वाणी में जो तेरी आत्मा सुनती है,
विश्व के सम्पर्कों में उन्हीं का एकमात्र स्पर्श करो अनुभव;
सभी चीजें तुझे देंगी लपेट उनके आलिंगन में।

अपने हृदय की धड़कनों को करो विजित, अपने दिल को धड़कने दो भगवान में :
प्रकृति तेरी बन जायेगी यंत्र कार्यों का उनके,
उनकी वाणी की शक्ति होगी तेरी वाणी में :
तब तू करेगी धारण शक्ति मेरी और जीत लेगी मृत्यु ।

सावित्री पृ.४७६

या यथा माम

गहराई में एक महत्तर गहराई है, ऊँचाइयों में एक महत्तर ऊँचाई। जैसे ही मनुष्य अनन्तताओं की सीमा पर पहुँचेगा वैसे ही वह अपनी निजी सत्ता की पूर्णता प्राप्त कर लेगा। क्योंकि वह सत्ता अनन्त है, भगवान है।

मैं अनन्त शक्ति, अनन्त ज्ञान, अनन्त आनन्द की अभीप्सा करता हूँ। क्या मैं इसे प्राप्त कर सकता हूँ? हाँ, किन्तु अनन्त की प्रकृति ऐसी है जिसका कोई अन्त नहीं होता। इसलिए यह न कहो कि मैं इसे प्राप्त करता हूँ। मैं वही बन जाता हूँ। केवल भगवान बनकर मनुष्य भगवान को प्राप्त कर सकता है।

परन्तु प्राप्त करने से पूर्व वह भगवान के साथ सम्बन्ध स्थापित कर सकता है। भगवान के साथ सम्बन्ध स्थापित करना योग है, सर्वोच्च लक्ष्य तथा उदारतम उपयोगिता। मानवता की परिधि में हमलोगों ने कुछ सम्बन्ध विकसित किये हैं। इन्हें प्रार्थना, आराधना, पूजा, बलिदान, विचार, निष्ठा, विज्ञान, दर्शन कहा जाता है। हमारी विकसित क्षमता से परे अन्य सम्बन्ध भी हैं किन्तु मानवता की परिधि के अन्दर उन्हें विकसित करना अभी बाकी है। वे सम्बन्ध जिन विविध अभ्यासों द्वारा उपलब्ध किये जाते हैं उन्हें हम सामान्यतः योग कहते हैं।

हो सकता है हम उसे भगवान के रूप में न जानें, उसे प्रकृति के रूप में जानें, अपनी ही उच्चतर सत्ता के रूप में, अनन्त के रूप में, कुछ अकथनीय लक्ष्य के रूप में जानें। बुद्ध ने उसमें इसी तरह प्रवेश किया। कट्टर अद्वैतवादी भी उसी मार्ग से जाते हैं। वे नास्तिक के लिए भी प्राप्य हैं। भौतिकवादी के लिए वे स्वयं को जड़-पदार्थ के छद्मवेश में छिपा लेते हैं। शून्यवादी के लिए वे सर्वनाश के वक्ष में छिप कर प्रतीक्षा करते हैं।
या यथा माम प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम।

CWSA 12: 5 — श्रीअरविन्द

भगवान क्या?

भगवान को जीवन में उतारा जाता है किन्तु इसे परिभाषित नहीं किया जा सकता : किन्तु क्योंकि तुमने मुझसे प्रश्न किया है, मैं उत्तर देती हूँ :

"भगवान पूर्णता की चरम अवस्था हैं, समस्त अस्तित्व के शाश्वत स्रोत हैं जिनके प्रति हम क्रमिक रूप से सचेतन होते हैं जबकि हम सब समय समस्त शाश्वत काल से स्वयं वही बने रहते हैं।"

उनके लिए जो परिभाषाएं पसन्द करते हैं, इस प्रश्न — 'भगवान क्या हैं' का उत्तर देने की विधि दूसरी है — "एक विराटता, मन्दहास्यमय और ज्योतिर्मय।"

"भगवान क्या हैं ?"... "यह मनुष्य द्वारा दिया गया उस समस्त के लिए नाम है जो उसका अतिक्रम करता और उस पर शासन करता है, उस समस्त के लिए जिसे वह ज्ञात नहीं कर सकता किन्तु उसकी अधीनता को स्वीकार करता है।"

"उस समस्त के लिए जो उसका अतिक्रम करता है" — इसके बदले यह रखा जा सकता है — "उसके लिए जो उसका अतिक्रम करता है", क्योंकि "समस्त" बौद्धिक दृष्टि से विवादास्पद है। मेरा तात्पर्य है कि "कुछ" है, कुछ जिसे परिभाषित नहीं किया जा सकता और उसकी व्याख्या नहीं की जा सकती और यह 'कुछ', मनुष्य ने हमेशा अनुभव किया है, यह उस पर शासन करता है। इसलिए धर्मों ने इसे एक नाम दे दिया है, मनुष्य उसे 'भगवान' कहता है। अंग्रेज उसे गॉड (God) कह कर सम्बोधित करते हैं। अन्य भाषाओं में उन्हें कुछ और कहा जाता है, किन्तु अन्ततः यह वही है।

CWM 11:64

भगवान वह है जो सर्वस्व है, फिर भी सर्वस्व से अधिक कुछ है और सर्वस्व का अतिक्रमण करता है। अस्तित्व में, सृष्टि में ऐसा कुछ भी नहीं है जो भगवान नहीं है, परन्तु भगवान न तो अस्तित्व का योगफल है और न उस योगफल में कोई चीज सिवा इसके कि वह अपनी चेतना के बिम्ब में एक प्रतीक हो। दूसरे शब्दों में हर चीज जिसका अस्तित्व है, अलग-अलग एक विशेष प्रतीक है तथा सत्ता का कुल योगफल एक सामान्य प्रतीक है जो अनानुवाद्य सत्ता का, भगवान का, वैश्व चेतना के रूप में अनुवाद करने का प्रयास करता है। अभिप्राय प्रयास करने का होता है, सफलता प्राप्त करने का अभिप्राय नहीं होता; क्योंकि जैसे ही यह सफल हो जाता है, यह स्वयं नहीं रह जाता और वह अनानुवाद्य कुछ चीज बन जाता है जहाँ से इसने आरम्भ किया था यानी भगवान। कोई भी प्रतीक पूर्ण रूप से भगवान को अभिव्यक्त करने के लिए अभिप्रेत नहीं होता, उच्चतम प्रतीक भी नहीं; परन्तु उच्चतम प्रतीकों को ही यह विशेषाधिकार प्राप्त है कि वे भगवान में अपनी पृथक निश्चितता को विलीन कर सकें, प्रतीक बनना बन्द कर सकें और वही चेतना बन जायें जो प्रतीक में व्यक्त की जाती है। मानवता भगवान की एक ऐसी ही प्रतीक या प्रतिबिम्ब है। बाइबल के शब्दों में, हमलोग उन्हीं की छवि में ढाले गये हैं। और उसका अर्थ है एक रूपात्मक छवि नहीं बल्कि उसकी सत्ता की छवि, उसके व्यक्तित्व की छवि। हमलोग उसकी दिव्यता तथा उसकी दिव्यता की गुणवत्ता के सारांश हैं। हमलोग एक दिव्य सत्ता तथा एक दिव्य ज्ञान के सांचे में ढाले गये हैं और हम पर उसी का मोहर है।

CWSA 12: 108-109 — श्रीअरविन्द

शिष्य : भगवान या परमोच्च प्रभु से आप का तात्पर्य क्या है ?

श्रीअरविन्द : इससे हमारा तात्पर्य है एक ऐसी चेतना से जिसे गीता परम भवम, पुरुषोत्तम, परब्रह्म, परमात्मन कहती है। यानी प्रत्येक वस्तु का मूल स्रोत, आधार तथा कारण। यह सर्वशक्तिमान तथा सर्वव्यापी है। तुम इसे परिभाषित नहीं कर सकते। यदि तुम इसे परिभाषित करो तब इसे सीमित कर देते हो। इसे सच्चिदानन्द के रूप में वर्णित किया जा सकता है। यह हर चीज है, यह सर्वत्र है, यह प्रत्येक चीज में है। यह निर्वैयक्तिक है, "नेति, नेति"। यह "इति, इति" भी है। तुम किसी स्तर पर सच्चिदानन्द की अनुभूति प्राप्त कर सकते हो। ये चीजें मन के द्वारा अथवा विचार-विमर्श के द्वारा नहीं जानी जा सकतीं। स्वर्णिम ढक्कन को तोड़ना होगा।

Evening Talks, p. 552 — श्रीअरविन्द

***

वह है निर्माता और जगत भी जिसका किया निर्माण उसने
वह आत्मदर्शन है और आत्मद्रष्टा भी
वह स्वयं अभिनेता है और अभिनय भी
वह स्वयं है ज्ञाता और ज्ञात भी
वह स्वयं स्वप्नद्रष्टा है और स्वप्न भी।

सावित्री, p. 61 — श्रीअरविन्द

सृष्टि का स्वामी हमारे अन्दर रहता है छिपा
औ' अपनी ही शक्ति के साथ खेलता है आँख मिचौनी;
रहस्यमय परमेश्वर करता है मटरगश्ती प्रकृति के यन्त्र में।

यह सर्वव्यापी मानव में करता है निवास निज गृह सम;
उसने बनाया है विश्व को अपने मनोरंजन का क्षेत्र,
अपनी शक्ति के कार्यों की बनायी है एक विराट व्यायामशाला।
सर्वज्ञ प्रभु हमारी अज्ञान की स्थिति को करता है स्वीकार,
पशु या मानव का रूप करता है धारण होकर भगवान;
चिरन्तन होकर भी नियति और काल का बन्धन करता स्वीकार,
होकर अमर मृत्यु के संग वह करता विहार।
उस परम चैतन्य ने अविद्या में उतरने का साहस किया है,
परमानन्द ने अचित् का बोझ है किया वहन।

– सावित्री, पृ.६६

वह लीलाधर है जो लीला बन गया,
वह चिन्तक है जो चिन्तन बन गया;
वह बहुसंख्य है जो मौन अकेला था।
वैश्व ऊर्जा के प्रतीक रूपों में
और उसके जीवन्त तथा अचेतन संकेतों में
और घटनाओं की उसकी जटिल नक्कासी में
वह अपने स्वयं के अनवरत चमत्कार की करता है गवेषणा,
जबतक सुलझ नहीं जाती सहस्रगुनी पहेली
एक सर्वसाक्षी आत्मा की एक मात्र ज्योति में।

– सावित्री, पृ.६८

भगवान के तीन पक्ष :

१. विश्वात्मा जो सभी वस्तुओं तथा सत्ताओं के भीतर और उनके पीछे रहती है जिससे और जिसमें सब कुछ विश्व में अभिव्यक्त होता है – यद्यपि यह अभी अज्ञान में अभिव्यक्ति है।

२. हमलोगों के भीतर आत्मन तथा हमारी अपनी सत्ता का स्वामी जिसकी हमें सेवा करनी है और अपनी समस्त गतिविधियों में उसके संकल्प को अभिव्यक्त करना सीखना है जिससे हम अज्ञान से प्रकाश में संवर्धित हो सकें।

३. भगवान लोकोत्तर सत्ता तथा आत्मन हैं, समस्त परमानन्द तथा ज्योति तथा भागवत ज्ञान तथा शक्ति और उस परम दिव्य सत्ता तथा उसकी ज्योति की ओर हमें आरोहण करना है और उसकी वास्तविकता को अधिक से अधिक अपनी चेतना तथा जीवन में उतारना है।

***

सामान्य प्रकृति में हम सब अज्ञान में रहते हैं और भगवान को नहीं जानते। सामान्य प्रकृति की शक्तियाँ अदिव्य शक्तियाँ होती हैं, क्योंकि वे अहंकार, कामना तथा निश्चेतना का आवरण बुनती हैं जो भगवान को हमलोगों से छिपा देता है। उच्चतर तथा गहनतर चेतना में प्रवेश करने के लिए, जो भगवान को जानती है और भगवान की ज्योति में निवास करती है – निम्न प्रकृति की शक्तियों से हमें पिण्ड छुड़ाना होगा तथा भागवत शक्ति के प्रति उद्घाटित होना होगा जो हमारी चेतना को भागवत प्रकृति की चेतना में रूपान्तरित कर देगी।

यह है भगवान की अवधारणा जिससे हमें आरम्भ करना है –

सत्य की सिद्धि केवल चेतना के उद्‌घाटन तथा इसके परिवर्तन से आ सकती है।

CWSA 29: 509 — श्रीअरविन्द

हम निश्चियपूर्वक कहते हैं कि कोई एक निरपेक्ष और चरम शक्ति है जो समस्त वस्तुओं का मूल स्रोत, आधार तथा रहस्यमय सत्य है। चरम सत्य को मानसिक विचार द्वारा तथा मानसिक भाषा में परिभाषित नहीं किया जा सकता और न उसका वर्णन किया जा सकता है। यह अपने लिए स्वयंभू तथा स्वयंसिद्ध है जैसा कि सभी चरम स्वयंसिद्ध होते हैं, परन्तु हमारी मानसिक स्वीकारोक्तियाँ तथा निषेध चाहे वे पृथक या एक साथ लिये जायें – इसे सीमित या परिभाषित नहीं कर सकते। परन्तु साथ-साथ एक आध्यात्मिक चेतना है, आध्यात्मिक ज्ञान है, तादात्म्य द्वारा ज्ञान जो सत्य को इसके मौलिक पक्षों तथा इसकी अभिव्यक्त शक्तियों तथा आकृतियों में अधिकृत कर सकता है।

चरम अपने आपको दो पदों में प्रकट करता है, एक सत्ता में और एक अभिव्यक्ति में। सत्ता आधारभूत सत्य है; अभिव्यक्ति प्रभावात्मक सत्य है। यह सत्ता की एक गत्यात्मक शक्ति तथा परिणाम है, एक सृजनात्मक ऊर्जा तथा कार्यान्वयन है। यह निरन्तर प्रयत्नशील रहती है फिर भी अपने अपरिवर्तनीय निराकार सारतत्व की परिवर्तनीय आकृति, प्रक्रिया तथा परिणति है। अभिव्यक्ति स्वयं को पूरी तरह से तभी जान सकती है जब अपने को सत्ता के रूप में जान ले। अभिव्यक्ति में आत्मा आत्मज्ञान तथा अमर्त्यता की अनुभूति तभी कर पाती है जब वह परम तथा चरम को जान जाती

है और अनन्त तथा शाश्वत की प्रकृति अधिकृत कर लेती है। यही कार्य हमारे जीवन का परम लक्ष्य है; क्योंकि वही हमारी सत्ता का सत्य है इसीलिए जन्मजात लक्ष्य होना चाहिये हमारी अभिव्यक्ति का एक अनिवार्य परिणाम। हमारी सत्ता का यह सत्य आत्मा में अभिव्यक्ति की आवश्यकता बन जाता है, जड़द्रव्य में एक रहस्यमय ऊर्जा, प्राण में एक प्रेरणा तथा प्रवृति, एक कामना तथा एक खोज; मन में एक संकल्प, लक्ष्य, प्रयत्न, उद्देश्य बन जाता है। इसके भीतर प्रथम गुह्य सत्य से उद्‌भूत को अभिव्यक्त करना ही क्रमविकासात्मक प्रकृति की समस्त गुप्त प्रवृति है।

CWSA 21:684 — श्रीअरविन्द

सृष्टि

सृष्टि या संसार का अस्तित्व एक आकस्मिक घटना नहीं है, किसी नगण्य व्यक्ति की निरुद्देश्य रचना नहीं है, ऐसी चीज नहीं है जो गैरजिम्मेदारी के साथ घटित हो गई हो। यह अपने भीतर प्रभु का सन्देश वहन करती है, यह एक प्रच्छन्न भागवत उपस्थिति से परिपूर्ण है।

संसार का अस्तित्व एक अन्ध यन्त्र नहीं है जो किसी प्रकार प्रकट हो गया और एक निर्धारित अधम गति से बिना किसी लक्ष्य या सोच विचार या उद्देश्य से चलने लगा। संसार का अस्तित्व वस्तुओं का एक सत्य है जो अभिव्यक्ति की क्रमिक प्रक्रिया के द्वारा प्रकट हो रहा है, अपनी ही अन्तर्निहित वास्तविकता का एक क्रमविकास है।

संसार का अस्तित्व एक भ्रान्ति नहीं है, एक माया नहीं है जिसका कोई कारण नहीं, वास्तविकता से कुछ लेना-देना न हो, अस्तित्वहीन हो लेकिन केवल अस्तित्व के समान प्रतीत होता हो। एक शक्तिशाली सद्वस्तु अपने भीतर इस अद्‌भुत ब्रह्माण्ड को अभिव्यक्त कर रही है।

CWSA 12:218 — श्रीअरविन्द

समस्त यहाँ, जहाँ प्रत्येक वस्तु होती है प्रतीत अपना एकाकी स्व
रूप हैं एक मात्र परात्पर एकल के :
केवल उन्हीं के द्वारा वे हैं, उनका श्वास है इनका प्राण;
एक अदृश्य उपस्थिति ढालती है विस्मृत मृदा को।

सावित्री पृ.६०

परम तत्व, पूर्ण, अकेला
किया प्रवेश निज नीरवता के साथ अन्तराल में :
एक स्वत्व के इन अनगिनत व्यक्तियों को ढाला है उसने ;
अपनी शक्ति के लाखों रूप किया है निर्मित ;
वह करता है सब में निवास, जो रहता था अपनी बृहतता में अकेला;
वह स्वयं है आकाश और केवल वही है काल।

परमतत्व, पूर्ण, असंक्राम्य,
वह जो हम सब में है हमारे गुह्य आत्मन रूप में
किया है धारण अपूर्णता का मुखौटा हमारा,
मांस के इस मकान को बनाया है अपना निवास,
मानव सांचे में ढाल दी है अपनी छवि

जिससे हम उठ सकें उसके दिव्य स्वरूप में ;
तब दिव्यता के रूप में एक
करेगा स्रष्टा निर्मित पुनः हमें और आरोपित
करेगा देव की एक योजना इस मर्त्य आकार में
उठा कर सान्त मनों को हमारे अपनी अनन्तता तक
काल को करता संस्पर्श शाश्वत के साथ।

यह रूपान्तरण है धरती का ऋण स्वर्ग पर :
बांधता है एक परस्पर ऋण परमोच्च से :
उसकी प्रकृति करनी होगी धारण जैसे उसने किया है हमारा :
हम बालक हैं भगवान के और होगा बनना वैसा ही हमें :
उसके मानव अंश, हमें बनना ही होगा दिव्य।

एक विरोधाभास है जीवन हमारा भगवान जिसकी कुंजी।

सावित्री पृ.६७

एक सत्य को करना है ज्ञात, करना है कार्य एक ;
प्रकृति की लीला है यथार्थ; एक रहस्य को करता है परिपूर्ण पुरुष :
है एक योजना माता की गहन वैश्व-सनक में,
है एक उद्देश्य उसकी बृहत् व अनियमित लीला में।

यही था उसका अभिप्राय सदा जीवन की प्रथम उषा से,
इस निरन्तर संकल्प को उसने किया आवृत लीला से अपनी,
व्यक्ति का करने आह्वान निर्वैयक्तिक शून्य में,

सत्य की ज्योति के साथ करने आघात समाधिस्थ पार्थिव जड़ता के
मूल पर,
अचेतन गहनताओं में करने जाग्रत एक मूक आत्मा को
एक लुप्त शक्ति को उठाने इसकी अजगरी निद्रा से
जिससे देख सकें कालातीत के नेत्र काल के बाहर
औ' कर सके विश्व अभिव्यक्त अनावृत भगवान को।

इसी के लिए त्याग दिया उसने अपनी शुभ्र अनन्तता को
औ' आत्मा पर रख दिया देह का बोझ
जिससे कि हो सके पुष्पित देवत्व का बीज निर्मन अन्तराल में
सावित्री पृ.७२

वे हैं दो जो एक हैं औ' करते हैं लीला जगतों में अनेक ;
विद्या और अविद्या में वे कर चुके हैं बात और मिल चुके हैं
प्रकाश और अन्धकार हैं उनके नयनों के विनिमय;
हमारे सुखःदुख हैं उनके मल्लयुद्ध और आलिंगन,
हमारे कर्म, हमारी आशाएं हैं अन्तरंग उनकी कथा के;
हमारे विचार और जीवन में वे हैं गठबंधित गुप्त रूप से।
विश्व है एक अनन्त छद्मवेशः
है यह एक सत्य की स्वप्निल यथार्थ दृष्टि
जो पूर्ण सत्य होगा नहीं स्वप्न को छोड़कर
एक दृश्य सत्ता दिखाई देती है स्पष्ट महत्वपूर्ण
शाश्वतता की मन्द पृष्ठभूमि में;
करते हैं स्वीकार हम इसके रूप को पर करते हैं उपेक्षित इसका

सम्पूर्ण तात्पर्य

दिखता है एक अंश हम समझते इसे सम्पूर्ण।
रचायी है लीला अपनी ऐसी ही पात्र बनाकर हमें
स्वयं ही कथाकार और अभिनेता स्वयं ही दृश्य
बन आत्मन होता वहाँ गतिमान औ' प्रकृति रूपा यहाँ।

सावित्री पृ.६१

अपनी दूरदर्शी चेतना के भावातिरेक में देखा स्वप्न उसने
परमेश्वर के स्वरूप में ढालने का मानवता को
और आवेशित करने का इस महा अन्ध संघर्षमय जगत को प्रकाश से
अथवा एक नये जगत के संधान का या सृजन का।
धरा को होगा करना रूपान्तरित स्वयं को और बनना स्वर्ग तुल्य
या उतर कर आये स्वर्ग धरा की मरणशील दशा में।
किन्तु इस बृहत् आध्यात्मिक परिवर्तन हित,
मानवहृत् की गुह्य गुफा से आकर बाहर
दिव्य चैत्य को हटाना होगा निज आवरण
और सामान्य प्रकृति के भीड़ भरे कक्षों में करना होगा प्रवेश
और खड़ा होना होगा अनावृत उस प्रकृति के समक्ष
और करना होगा शासित विचारों को व परिपूरित देह व प्राण को।

सावित्री पृ.४८६

भौतिक जगत का तात्पर्य

जिस विश्व में हम सब रहते हैं वह एक निरर्थक अप्रत्याशित घटना नहीं है जो गैर जिम्मेदारी से शून्य आकाश में घटित हो गई है। यह क्रमिक विकास का एक दृश्य है जिसमें एक शाश्वत सत्य को मूर्त्त रूप दिया गया है, वस्तुओं के आकार में आवृत किया गया है और जो युगों-युगों से प्रच्छन्न रूप से प्रकटन की प्रक्रिया में है। हमारे अस्तित्व का एक अर्थ है, हमारे जन्म-मरण तथा प्रसव-पीड़ा के पीछे एक उद्देश्य है, हमारे समस्त परिश्रम की एक परमगति है। एक ही योजना के सभी अंग हैं; विश्व में कुछ भी व्यर्थ नहीं बनायी गयी है; हमारे जीवन में कुछ भी निस्सार नहीं है।

क्रमविकास को इसी योजना के अनुकूल व्यवस्थित किया गया है अथवा यह स्वयं अपने आप को व्यवस्थित करता है। यह यहाँ जगतों की एक व्यवस्था के साथ आरम्भ करता है जो जड़ प्रतीत होते हैं, फिर भी निरन्तर गतिमान हैं। यह जड़-द्रव्य के औचित्य को सिद्ध करता हुआ जन्म, जीवन तथा चेतना की ओर बढ़ता है। दिव्यता की ओर बढ़ते हुए चिन्तनशील मनुष्य में जन्म का औचित्य देखता है। जड़-द्रव्य में देवत्व की एक मन्द प्रगति, भौतिक जगत का तात्पर्य है।

CWSA 12: 229 — श्रीअरविन्द

योग क्या है?

१. अपनी सत्ता के सभी भागों में सब प्रकार से उसके साथ जो सर्वोच्च है एकात्म होना – यही योग है।

अपनी सत्ता के सभी भागों में उसके साथ जो समस्त है एकात्म होना – यही योग है।

समस्त प्रकृति तथा सभी सत्ताओं के साथ एकात्म होना, यही योग है। यह सब भगवान के साथ उसकी परात्परता में, उसकी विश्व-व्यवस्था में और उस सब में जो उसने अपनी सत्ता में सृजित किया है – एकात्म होना है। क्योंकि उसी से सब कुछ निःसृत हुआ है और उसी में सब कुछ है और वही सब कुछ है और सबमें है और क्योंकि वह तुम्हारा उच्चतम स्वत्व है और तुम अपनी आत्मा में उसके साथ एकात्म हो और अपने चैत्य में उसके एक अंश हो तथा अपनी प्रकृति में उसके साथ लीलारत हो और क्योंकि यह विश्व उसी की सत्ता में एक दृश्य है जिसमें वह तुम्हारा स्वामी और प्रेमी तथा मित्र है तथा तुम जो कुछ हो उस सबका वह प्रभु तथा पोषक है, इसीलिए उसके साथ एकात्मता तुम्हारी सत्ता की सम्पूर्ण प्रवृति है।

CWSA 12: 333 – श्रीअरविन्द

२. योग सत्ता में सुषुप्त गुप्त सम्भावनाओं की अभिव्यक्ति के द्वारा आत्मपूर्णता के लिए क्रमबद्ध प्रयास है और उस प्रयास में विजय की सर्वोच्च स्थिति – मानव व्यष्टि का वैश्व तथा परात्पर सत्ता के साथ मिलन – हम मनुष्य में और विश्व में आंशिक रूप से अभिव्यक्त देखते हैं।

CWSA 23:6 – श्रीअरविन्द

३. योग की प्रक्रिया मानव आत्मा का वस्तुओं के बाह्य आभासों तथा आकर्षणों में लिप्त चेतना की अहंकारात्मक स्थिति से उच्चतर स्थिति की ओर मोड़ या घुमाव है जिसमें परात्पर तथा वैश्व चेतना अपने को व्यष्टिगत सांचे में ढाल सकती तथा उसे रूपान्तरित कर सकती है ।

CWSA 23:58 – श्रीअरविन्द

४. योग मानव मस्तिस्क का एक कोई आधुनिक आविष्कार नहीं है बल्कि हमारा प्राचीन तथा प्रागैतिहासिक धरोहर है। वेद हमलोगों का प्राचीनतम प्रचलित मानव दस्तावेज है और यह एक दृष्टिकोण से योग के विषय में व्यावहारिक संकेतों का विशाल संग्रह है। समस्त धर्म एक पुष्प है योग जिसका मूल है। समस्त दर्शनशास्त्र, काव्य तथा प्रतिभाशाली कृतियाँ चेतन या अचेतन रूप से एक उपकरण के रूप में इसका उपयोग करती हैं। हम यह विश्वास करते हैं कि भगवान ने जगत की रचना योग के द्वारा की और योग के द्वारा ही वह पुनः इसे अपने आप में विलीन कर लेगा। *योगः प्रभवप्ययौ*, योग वस्तुओं का जन्म और मरण है। जब श्रीकृष्ण अर्जुन के समक्ष अपनी सृष्टि की महानता और उस विधि के बारे में रहस्योद्घाटन करते हैं जिसमें उन्होंने अपनी सत्ता से तार्किक विरोधों के सामंजस्य द्वारा उसे निर्मित किया है तब वे कहते हैं – "पश्य मे योगं ऐश्वर्यम्"। मेरे दिव्य योग को देख। हमलोग प्रायः शब्द का अधिक सीमित अर्थ लगाते हैं। जब हम इसे सुनते या प्रयुक्त करते हैं तब हम पतंजलि के योग के बारे में सोचते हैं – प्राणायाम, योगासन, धारणा, योगी की समाधि। किन्तु ये योग की एक खास विधि के विस्तार हैं। विधियाँ अपने आप में वस्तु विशेष नहीं हैं जैसे सिंचाई के लिए निष्कासित

नहर का पानी गंगा नहीं है। योग प्राणायाम के विचार के बिना भी किसी भी आसन में या बिना योगासन के, बिना धारणा के, विचार के, पूर्ण जाग्रत अवस्था में, चलते, कार्य करते, खाते, पीते, वार्तालाप करते, किसी काम में व्यस्त रहते हुए, नींद में, स्वप्न में, अचेतन अवस्था में, अर्ध चेतन अवस्था में, दोहरी चेतना में किया जा सकता है। यह कोई नीम हकीम का उपचार या विधि या रूढ़ प्रथा नहीं है बल्कि जगत की प्रकृति पर ही आधारित प्रक्रिया का एक शाश्वत तथ्य है।

फिर भी व्यवहार में विशिष्ट तथा सुनिश्चित लक्ष्यों के लिए इस सामान्य प्रक्रिया के कुछ प्रयोगों के लिए नाम को सीमित किया जा सकता है। योग सारतः इस तथ्य पर आधारित है कि इस विश्व में हम सर्वत्र एक हैं, फिर भी विभक्त हैं, अपनी सत्ता में एक हैं फिर भी विभक्त हैं, एक होते हुए भी सब प्रकार से अपने साथी प्राणियों से अलग हैं, एक होते हुए भी अनन्त सत्ता से जिसे हम भगवान कहते हैं, प्रकृति या ब्रह्म कहते हैं, विभक्त हैं। योग सामान्य रूप से एक ऐसी शक्ति है जिसके द्वारा एक शरीर में रहनेवाली आत्मा दूसरी आत्माओं के साथ, जाग्रत चेतना के पीछे रहनेवाले अपने ही अंशों के साथ, प्रकृति की शक्तियों तथा उसके उद्देश्यों के साथ, सच्चिदानन्द के साथ प्रभावी सम्बन्ध स्थापित कर सकती है जो या तो स्वयं उस एकता के लिए अथवा हमारी अभिव्यक्त सत्ता, ज्ञान, क्षमता, शक्ति या आनन्द की वृद्धि या परिवर्तन के लिए विश्व को शासित करता है। कोई भी प्रणाली जो हमारी आन्तरिक सत्ता तथा हमारे बाह्य ढांचे को इन लक्ष्यों की पूर्ति के लिए सुव्यवस्थित करे उसे योग की एक प्रणाली कहा जा सकता है।

CWSA 12:18 — श्रीअरविन्द

गीता में योग

गीता कहती है कि कर्म की कुशलता योग है और इस सूक्ति के द्वारा प्राचीन शास्त्र का यह तात्पर्य था कि मन तथा सत्ता के रूपान्तरण से, जिसे योग कहा गया है एक पूर्ण आन्तरिक स्थिति तथा क्षमता आ जाती थी जिसके द्वारा क्रिया का समुचित सिद्धान्त तथा कर्म का समुचित आध्यात्मिक एवं दिव्य परिणाम स्वाभाविक रूप से इस प्रकार प्रकट होता था जिस प्रकार अपने बीज से वृक्ष प्रकट होता है। निश्चय ही इसका अर्थ यह नहीं था कि एक चतुर सेनापति या राजनीतिज्ञ या वकील या मोची योगी कहलाने का अधिकारी है। इसका तात्पर्य यह नहीं था कि किसी प्रकार की कार्य कुशलता योग है बल्कि योग से अभिप्राय था वैश्व समानता तथा भगवान के साथ एकता की एक आध्यात्मिक अवस्था और यौगिक कर्मी की कुशलता से अभिप्राय था अहंकार के बन्धन से मुक्त प्रकृति तथा ऐन्द्रिकमन की सीमाओं में आत्मा तथा इसके यन्त्रों का दिव्य तथा वैश्व आत्मन के लय के साथ पूर्ण अनुकूलन।

तत्वतः योग उन प्रक्रियाओं तथा प्रक्रियाओं के परिणाम के लिए वंशगत नाम है जिनके द्वारा हम अपने रहन-सहन के वर्तमान तरीकों को अतिक्रान्त कर जाते हैं या उनकी धज्जियाँ उड़ा देते हैं तथा चेतना के एक नये, एक उच्चतर, एक विशालतर विधि तक ऊपर उठ जाते हैं जो सामान्य पाशविक तथा बौद्धिक मनुष्य के जैसा नहीं होता। योग अहंकारात्मक चेतना का वैश्व चेतना के साथ आदान-प्रदान है जो उस अति वैश्व, परात्पर अनाम की ओर ऊपर उठती है जो सभी वस्तुओं का उद्‌गम तथा अवलम्ब है।योग चिन्तनशील पशु-मानव से भागवत चेतना की ओर जानेवाला मार्ग है जहाँ से वह

आया है। उस आरोहण में हम अनेक स्तर तथा चरण और उस पहाड़ी के पठार पर पठार पाते हैं जिसका शिखर वस्तुओं के सत्य को स्पर्श करता है। परन्तु प्रत्येक चरण पर गीता का कथन सदा उच्चतर से उच्चतर बिन्दु तक लागू होता है। इस नये विधान तथा आन्तरिक व्यवस्था का अल्पांश भी आत्मा को उस बड़े संकट के खतरे से मुक्त कर देता है जिसके द्वारा वह सांसारिक पतन और अज्ञान से आक्रान्त हो गया था और जिसके द्वारा अप्रदीप्त बुद्धि चाहे वह कितना भी तीक्ष्ण तथा पंडित क्यों न हो सीमा और बन्धन में आ पड़ता है, दुःख और पाप में गिर जाता है जिससे अशुद्ध हृदय के व्यक्ति को चाहे उसमें कितनी भी अभीप्सा और संवेदन क्यों न हो, कलंक और दारिद्रय और अपमान की पीड़ा सदा के लिए सहन करनी पड़ती है। वह कर्म के अहंकार का शिकार हो जाता है जिससे मनुष्य का अदिव्य संकल्प चाहे वह कितना भी प्रचण्ड और सशक्त क्यों न हो या ऐश्वर्ययुक्त और विजयमान क्यों न हो उसे भी सनातन रूप से कष्ट का शिकार होना पड़ता है। यह योग की उपयोगिता है जो हमारे सामान्य मानव अस्तित्व के दुश्चक्र से निकलने के लिए एक द्वार खोल देता है।

CWSA 13:119 — श्रीअरविन्द

योग की चार शक्तियाँ और उद्देश्य हैं — शुद्धता, मुक्ति, परमानन्द तथा पूर्णता। जिसने भी इन चार शक्तियों को परात्पर, वैश्व, लीलामय तथा व्यष्टिगत भगवत् सत्ता में परिपूर्ण कर लिया है वह सम्पूर्ण तथा परम योगी है।

CWSA 12:93 — श्रीअरविन्द

योग न केवल हमारी प्रच्छन्न आध्यात्मिक स्थिति की एक खोज है, बल्कि एक गत्यात्मक आध्यात्मिक आत्म-सृजन है। एक त्रिविधि रूपान्तरण इसकी प्रक्रिया का मर्म और इसके सम्पूर्ण महत्व का उद्‌घाटन है। इसका प्रथम चरण है आत्मा का अनावरण, क्योंकि एक गुह्य चैत्य सत्ता है, हमारी गहराइयों में एक दिव्य तत्व जो मन, शरीर तथा प्राण से आवृत होने की अपेक्षा कहीं अधिक प्रच्छन्न है। उस एकान्त से उसे बाहर लाना जहाँ वह किसी स्पष्ट प्रभाव के बिना एक आध्यात्मिक राजा के समान रहता है और इसके मंत्री इसकी सेवा करते तथा उसके बदले काम करते हैं ताके कभी वह प्रकृति की सम्पूर्ण सक्रिय सत्ता का मालिक बन सके – योग का प्रथम महा प्राकट्य, प्राथमिक समर्थ आत्मानुसंधान है। हमारा विचारक मन हमारे अन्दर प्रधान मंत्री है जो राजा को आवृत कर लेता है, किन्तु मन पर भी प्राणिक शक्तियों का राज्य और नेतृत्व है जो प्रबल और हिंसात्मक प्रवृति का है और जो अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए इसका प्रयोग करता है। ये दोनों भी शरीर तथा भौतिक प्रकृति द्वारा दिये गये साधन के द्वारा ही कार्य कर सकते हैं जो जड़ है, अचेतन अस्तित्व है और जिसकी निश्चेष्ट स्वीकृति और आज्ञा परायणता उसके शासकों के लिए अपरिहार्य है। यह हमारी वर्तमान संरचना है और यह एक प्रकार की संघटित अव्यवस्था से अधिक कुछ और नहीं है, एक ऐसी सामन्ती व्यवस्था जो अज्ञानपूर्ण अर्ध अराजकता हो और जब वह प्रकृति के सीमित क्षेत्र की हमारी अन्तर्निहित संभावनाओं तथा संसाधनों से अधिकांश लाभ नहीं उठा सकती तब हमारे आध्यात्मिक साम्राज्य का रहस्योद्‌घाटन तथा विकास क्या करेगी। अपेक्षित क्रांति में प्रथम चरण होगा आत्मा रूपी राजा को पुनर्प्रतिष्ठित करना। आत्मा मन के माध्यम से अपनी प्रभुसत्ता का

प्रयोग प्राण की शक्तियों पर करेगी और उसके बदले एक प्रदीप्त तथा भौतिक रूप से सहमत शरीर को उनके अधीन कर देगी। परन्तु यही सब कुछ नहीं है, क्योंकि आत्मा की खोज तब तक पूरी नहीं होगी जब तक प्रकृति के मानसिक, प्राणिक तथा भौतिक यंत्रों का नया चैत्य-जन्म नहीं हो जाता। आत्मा के सत्य सम्बन्धी अन्तर्भास द्वारा मन का पुनर्गठन किया जायेगा, प्राणिक सत्ता का शक्ति तथा शुभ के विषय में इसके प्रत्यक्ष ज्ञान के द्वारा तथा शरीर और इसकी सम्पूर्ण प्रकृति का ज्योति, सामंजस्य तथा सौन्दर्य के लिए इसके आदेश द्वारा पुनर्गठन किया जायेगा। हमारी प्रकृति एक सच्ची चैत्य सत्ता की प्रकृति बन जायेगी न कि एक सन्दिग्ध प्राण तथा एक संघर्षरत बुद्धि के कृत्रिम प्रकाश द्वारा एकीकृत एक पाशविक सृजन।

CWSA 12:369 — श्रीअरविन्द

पूर्ण योग

हमलोगों का योग रूपान्तर का योग है, सम्पूर्ण चेतना के तथा ऊपर से लेकर नीचे तक की सम्पूर्ण प्रकृति के, तथा इसके आन्तरिक प्रच्छन्न भागों से लेकर सर्वथा ठोस बाहरी गतिविधियों के रूपान्तर का योग है। यह न तो नैतिक परिवर्तन है और न धर्मान्तरण और न साधुता, न संन्यासी का आत्मसंयम, न जीवन तथा प्राण की गतिविधियों का परिष्करण या दमन और न भौतिक अस्तित्व का महिमान्वयन अथवा अवपीड़क नियन्त्रण या अस्वीकरण है। हमारा लक्ष्य है लघुतर चेतना से महत्तर चेतना में, निम्नतर से उच्चतर चेतना में, सतही चेतना से गहनतर चेतना में परिवर्तन — निस्सन्देह

यथासम्भव विशालतम, उच्चतम, गहनतम चेतना में परिवर्तन और सम्पूर्ण सत्ता के उपादान और द्रव्य तथा उसके हर विस्तार का उस चीज में क्रान्तिकारी रूपान्तर जो अभी तक सत्ता की दिव्यतर प्रकृति में असिद्ध है। इसका अर्थ है अभी जो चीज प्रच्छन्न और अवचेतन है, जो उसके प्रति सचेतन हो रही है जो हमारे लिए अभी अतिचेतन है, उसे सामने लाना, और अवचेतन तथा अवभौतिक का प्रदीप्तिकरण। इसका अर्थ है मन द्वारा वर्तमान नियन्त्रण के स्थान पर आत्मा द्वारा प्रकृति पर नियन्त्रण, बाह्य मन से प्रकृति की यान्त्रिकता का अर्ध-आवृत आन्तरिक मन से अब कहीं अधिक आन्तरिक मन को हस्तान्तरण, बाह्य प्राण से आन्तरिक प्राण या जीवन के आत्म तत्व को, बाह्य भौतिक से आन्तरिक सूक्ष्मतर विशालतर भौतिक चेतना को हस्तान्तरण। और इस हस्तान्तरण के द्वारा हमें संचालित करनेवाली गुप्त वैश्व शक्तियों के साथ अप्रत्यक्ष तथा अचेतन या अर्ध चेतन सम्पर्क के बदले एक प्रत्यक्ष तथा सचेतन सम्पर्क। संकीर्ण सीमित व्यक्तिगत चेतना से एक विशाल वैश्व चेतना में उद्घाटन। मानसिक से आध्यात्मिक प्रकृति में आरोहण। मन में निहित आत्मा या विस्तारित आत्मा से अतिमानसिक आत्मा में आरोहण तथा मूर्त सत्ता में उसका अवतरण। यह सब केवल सिद्ध ही नहीं किया जाना है वरन् रूपान्तरण के पूर्ण होने से पूर्व आयोजित किया जाना है।

CWSA 12:371 — श्रीअरविन्द

कठोपनिषद् में एक शक्तिशाली तथा सारगर्भित वाक्यांश का प्रयोग आया है जिसमें गागर में सागर के समान अर्थ भरा हुआ है। ऐसे कितने ही शब्द उपनिषदों में भरे पड़े हैं। *योगोहि प्रभाव प्यायौ*। योग वस्तुओं का आरम्भ और अन्त है। पुराणों में इस वाक्यांश के

अर्थ को रेखांकित तथा विकसित किया गया है। परमेश्वर ने योग के द्वारा सृष्टि की रचना की, योग के द्वारा ही अन्त में वह इसे अपने अन्दर समाहित कर लेगा। परन्तु न केवल मौलिक सृष्टि तथा विश्व का अन्तिम विनाश, बल्कि वस्तुओं के सभी महान परिवर्तन, सृजन, विकास, विनाश योग या तपस्या की मौलिक प्रक्रिया से ही कार्यान्वित किये जाते हैं। इस प्राचीन दृष्टि में योग अपने को स्वयं प्रकृति की ही उसकी समस्त प्रक्रियाओं में प्रभावशाली, शायद अनिवार्य तथा वास्तविक कार्यकारी गतिविधि के रूप में प्रस्तुत करता है। यदि प्रकृति की सामान्य प्रणाली में यह ऐसा है, यदि वस्तुओं में निहित एक दिव्य ज्ञान तथा एक दिव्य संकल्प अपने को प्रयोजनों के साथ सापेक्षित करके समस्त शक्ति तथा प्रभावकारिता का सच्चा कारण बन सकता है तब मानव गतिविधियों में भी वही नियम लागू होना चाहिये। विशेष कर मनोवैज्ञानिक की समस्त सचेतन तथा संकल्पित प्रक्रियाओं में भी जिन्हें यौगिक प्रणाली कहते हैं – उसे लागू होना चाहिये। योग को वास्तव में और कुछ नहीं बल्कि एक ऐसा पूर्ण तथा आत्म सचेतन प्राकृतिक प्रक्रिया होनी चाहिये जिसका प्रयोजन हो द्रुत गति से उद्देश्यों को प्राप्त करना जिन्हें सामान्य स्वाभाविक प्रक्रिया से प्राप्त करने में एक दीर्घकालीन यहाँ तक कि हजारों वर्षों के मन्द क्रमिक विकास से गुजरना पड़ता है।

एक सुस्पष्ट अन्तर है। योग में हमारे सामने रखा गया लक्ष्य है भगवान। प्रकृति का लक्ष्य है परा प्रकृति को कार्यान्वित करना। किन्तु ये दोनों लक्ष्य एक ही अंश और अभिप्राय के हैं। भगवान तथा पराप्रकृति एक मात्र वास्तविक है और दूसरा एक असाध्य सिद्धि का औपचारिक पक्ष है जिसकी ओर हमलोगों का मानव प्रयाण अपने आरोहण में निर्देशित है। मनुष्य के लिए योग प्रकृति की ऊर्ध्वमुखी

कार्यप्रणाली है जो मन्द क्रमिक विकास तथा दीर्घ पुनरावर्तन से मुक्त है तथा दिव्य या मानवीय ज्ञान में आत्म-सचेतन है।

CWSA 12: 108 — श्रीअरविन्द

***

योग के द्वारा हमलोग मिथ्यात्व से निकल कर सत्य में ऊपर उठ सकते हैं, दौर्बल्य से निकल कर प्राबल्य में, कष्ट और दुःख से परमानन्द में, दासता से मुक्ति में, मृत्यु से अमरत्व में, अन्धकार से प्रकाश में, भ्रान्ति से शुद्धता में, अपूर्णता से पूर्णता में, आत्मविभाजन से एकता में, माया से निकल कर ईश्वर में उठ सकते हैं। योग की अन्य समस्त उपयोगिता विशिष्ट तथा आंशिक लाभों के लिए है जो हमेशा अनुसरणीय नहीं होती। केवल वही पूर्ण योग है जिसका लक्ष्य परमेश्वर की पूर्णता को उपलब्ध करना हो। भागवत पूर्णता का साधक पूर्ण योगी होता है।

हमारा लक्ष्य उतना ही परिपूर्ण बनना होना चाहिये जितना अपनी सत्ता और परमानन्द में भगवान परिपूर्ण है, उतना ही शुद्ध बनना जितना वह शुद्ध है, उतना ही परमानन्दपूर्ण बनना जितना वह परमानन्दपूर्ण है। और जब हमलोग स्वयं पूर्ण योग में सिद्ध हो जायें तब समस्त मानवता को उसी भागवत पूर्णता में ढालना। कोई बात नहीं यदि कुछ वर्तमान समय के लिए हम अपने लक्ष्य तक न पहुँच पायें, फिर भी यदि हम सच्चे हृदय से इस प्रयास में लगे रहें तथा इसके लिए और इसी में निरन्तर रहते हुए पथ में दो इंच भी आगे बढ़ पायें तब भी इससे मानवता को संघर्ष और धुंधलेपन से जिसमें अभी पड़ी हुई है — बाहर भगवान द्वारा वांछित ज्योतिर्मय आनन्द की ओर आगे ले जाने में सहायता मिलेगी। परन्तु हमारी तात्कालिक सफलता जो भी हो, हमारा अटल लक्ष्य होना चाहिये सम्पूर्ण यात्रा

को तय करना और राह किनारे किसी पड़ाव पर या अपूर्ण विश्राम स्थल पर सन्तुष्ट होकर सो नहीं जाना।

समस्त योग जो तुम्हें संसार से पूर्ण रूप से अलग ले जाता है वह उच्च परन्तु भागवत तपस्या का संकीर्ण विशिष्टीकरण है। भगवान अपनी पूर्णता में प्रत्येक चीज को समाविष्ट करता है; तुम्हें भी सर्वसमाविष्टकारी बनना होगा।

आनन्द में प्रसन्नता शुद्ध, अमिश्रित, एक होते हुए भी बहुसंख्यक होती है। मन, प्राण तथा शरीर की स्थितियों में यह विभाजित, सीमित, भ्रान्तिपूर्ण, विमार्गदर्शित हो जाती है। तथा विषम शक्तियों के आघात तथा आनन्द के असम विभाजन के कारण यह सकारात्मक तथा निषेधात्मक गतियों, शोक व हर्ष, दुःख व सुख के द्वैत का शिकार बन जाती है। हमलोगों का कार्य है इन द्वयात्मकताओं के कारण को भंग करके उन्हें विलीन करना तथा भागवत परमानन्द के सागर में, जो एक होते हुए भी बहुसंख्यक है, सम है, जो सभी वस्तुओं से प्रसन्नता ग्रहण करता है तथा किसी से कष्टपूर्वक पीछे नहीं हटता, हमें अपने आप को उछाल देना।

संक्षेप में, हमें द्वयात्मकताओं के स्थान पर एकता, अहंकार के स्थान पर दिव्य चेतना, अज्ञान के स्थान पर दिव्य प्रज्ञा, विचार के स्थान पर दिव्य ज्ञान, दौर्बल्य, संघर्ष, चेष्टा के स्थान पर आत्मतुष्ट दिव्य शक्ति, दुःख तथा मिथ्या सुख के स्थान पर दिव्य परमानन्द को प्रतिस्थापित करना है। ईसा की भाषा में इसे कहा जाता है धरती पर स्वर्ग के राजा को उतारना अथवा आधुनिक भाषा में कहा जाता है संसार में भगवान को सिद्ध करना तथा उन्हें कार्यान्वित करना।

मानवता, पृथ्वी पर, जीवन का एक रूप है जिसे इस मानव अभीप्सा तथा भागवत पूर्णता के लिए चुना गया है। जीवन के अन्य

रूपों को या तो इसकी आवश्यकता नहीं होती अथवा सामान्यतः वे इसके लिए असमर्थ हैं जब तक वे मानवता में परिणत नहीं हो जाते। इसलिए भागवत परिपूर्णता मानवता का एकमात्र सच्चा लक्ष्य है। इसे एक व्यष्टि में इसलिए कार्यान्वित करना पड़ता है ताकि सम्पूर्ण जाति में इसे कार्यान्वित किया जा सके।

CWSA 12: 98 — श्रीअरविन्द

पूर्ण योग का लक्ष्य

हमारे योग्य का लक्ष्य है आत्म परिपूर्णता, आत्म निराकरण नहीं।

योगी के चरणों के सामने दो मार्ग आते हैं – संसार से प्रत्याहार तथा संसार में परिपूर्णता। प्रथम आता है वैराग्य के द्वारा, दूसरा तपस्या के द्वारा कार्यान्वित किया जाता है। पहला पथ हमारा स्वागत तब करता है जब हम संसार में भगवान को नहीं देख पाते। दूसरे की सिद्धि तब प्राप्त होती है जब हम भगवान में संसार को परिपूर्ण करते हैं। हमलोगों का मार्ग परिपूर्णता का हो, त्याग का नहीं। हमारा लक्ष्य बने युद्ध में विजय, न कि समस्त संघर्ष से पलायन।

बुद्ध और शंकर ने संसार को मौलिक रूप से मिथ्या और दुःखपूर्ण मान लिया, इसलिए संसार से पलायन उनके लिए एक मात्र विवेकपूर्ण प्रतीत हुआ। परन्तु यह संसार ब्रह्म है, संसार भगवान है, संसार सत्यम है, संसार आनन्द है। मानसिक अहम् के द्वारा यह हमारा विश्व के बारे में अशुद्ध विचार ही है जो एक मिथ्यात्व है तथा हमारा विश्व में भगवान के साथ गलत सम्बन्ध ही है जो दुःख का कारण है।

भगवान ने अपने भीतर माया के द्वारा संसार की रचना की,

परन्तु माया का वैदिक अर्थ भ्रम नहीं है, प्रज्ञा है, ज्ञान है, क्षमता है, चेतना में विशाल प्रसार है। *प्रज्ञा प्रस्रिता पुराणी*। सर्व शक्तिमान प्रज्ञा ने विश्व की सृष्टि की, यह कोई अनन्त स्वप्नद्रष्टा की संगठित भूल नहीं है। सर्व शक्तिमान शक्ति इसे अभिव्यक्त करती है अथवा अपने अन्दर अपने ही आनन्द को संगोपित रखती है। यह उसके ही अपने अज्ञान द्वारा मुक्त और परब्रह्म पर आरोपित कोई बन्धन नहीं है।

यदि संसार ब्रह्म का आत्म-आरोपित दुःस्वप्न होता तब इससे जाग्रत होना हमारे परम प्रयास का स्वाभाविक तथा एकमात्र लक्ष्य होता। अथवा यदि संसार का जीवन अवैकल्पिक रूप से दुःख से आबद्ध होता, तब इस बन्धन से पलायन का साधन एक मात्र खोज करने योग्य रहस्य होता। परन्तु सांसारिक जीवन में पूर्ण सत्य उपलब्ध करना सम्भव है, क्योंकि भगवान यहाँ सब वस्तुओं को सत्य की आँख से देखते हैं। तथा संसार में पूर्ण परमानन्द सम्भव है क्योंकि भगवान सभी वस्तुओं में विशुद्ध मुक्ति के भाव से आनन्द लेते हैं। हमलोग भी इस सत्य तथा परमानन्द का आनन्द ले सकते हैं जिसे वेद में अमृतम् कहा गया है यदि हम अपने अहमात्मक जीवन को परम सत्ता के साथ पूर्ण एकता में ढाल कर दिव्य प्रत्यक्ष ज्ञान और दिव्य मुक्ति प्राप्त करने को तैयार हों या राजी हो जायें।

यह संसार भगवान की उनकी अपनी ही सत्ता में एक गति है; हमलोग दिव्य चेतना के केन्द्र तथा ग्रन्थि हैं जो उनकी गति की प्रक्रियाओं का सार प्रस्तुत करते हैं तथा समर्थन देते हैं। संसार उनके अपने ही आत्मचेतन आनन्द के साथ उनकी लीला है, वे जो केवल वे ही अस्तित्व रखते हैं, जो अनन्त हैं, मुक्त और पूर्ण हैं। हमलोग उस सचेतन आनन्द के आत्म-बहुलीकरण हैं जो उनके बाल सखा बनने के लिए सत्ता में प्रक्षेपित कर दिय गये हैं। यह संसार एक सूत्र

है, एक लय, एक प्रतीकात्मक प्रणाली जो भगवान को अपनी ही चेतना में अपने आप के प्रति अभिव्यक्त करती है, – इसका भौतिक अस्तित्व नहीं है किन्तु केवल अपनी चेतना में तथा आत्म अभिव्यक्ति में इसका अस्तित्व है। हमलोग भगवान के समान अपनी आन्तरिक सत्ता में वही तत् हैं जो अभिव्यक्त हुआ है, किन्तु अपनी बाह्य सत्ता में उसी सूत्र की शर्तें हैं, उसी लय के स्वर हैं, उसी प्रणाली के प्रतीक हैं। भगवान के आन्दोलन को हम सब आगे बढ़ायें, उनकी लीला में लीला करें, उनके सूत्र को कार्यान्वित करें, उनके सामंजस्य को कार्यान्वित करें, अपने आप के माध्यम से उनकी प्रणाली में उनको अभिव्यक्त करें। इसमें हमलोगों का आनन्द है तथा आत्म परिपूर्णता है। इस लक्ष्य की ओर हमलोगों ने जो विश्व का अतिक्रमण करते हैं, वैश्व जीवन में प्रवेश कर लिया है।

पूर्णता को कार्यान्वित किया जाना है, सामंजस्य को परिपूर्ण किया जाना है। अपूर्णता, सीमा, मृत्यु, शोक, अज्ञान, जड़-पदार्थ सूत्र की केवल प्रथम अवस्थाएं हैं – जो तब तक समझ में नहीं आता जब तक हमलोग विशालतर शर्तों को कार्यान्वित नहीं कर लेते तथा सूत्रसंहिता की पुनर्व्याख्या नहीं कर लेते। ये सब संगीतज्ञ के समस्वरण के आरम्भिक बेसुरापन हैं। हमें अपूर्णता में से पूर्णता की रचना करनी है, सीमाबद्धता से असीमता की खोज करनी है, मृत्यु में अमरत्व को प्राप्त करना है, शोक में से दिव्य परमानन्द की खोज करनी है, अज्ञान में से दिव्य आत्मज्ञान को मुक्त करना है, जड़ पदार्थ में से आत्मन को रहस्योद्घाटित करना है। अपने तथा मानवता के लिए इस लक्ष्य को सिद्ध करने का मार्ग प्रशस्त करना हमारे योगाभ्यास का उद्देश्य है।

CWSA 12: 96 – श्रीअरविन्द

व्यावहारिक चिन्तकजन सामान्य रूप से यह मानते हैं कि वेदान्त के ज्ञान आध्यात्मिक समागम की विधि के रूप में जीवन और योग के खतरनाक पथ प्रदर्शक हैं जो मनुष्यों को कर्म से हटा कर अमूर्त भाव या काल्पनिक जगत की ओर ले जाते हैं। हम ऐसे लोगों को छोड़ देते हैं जो ऐसे विश्वासों को रहस्यवाद मानते हैं, आत्मप्रवंचना या ढोंग समझते हैं; किन्तु उनकी भी जो हिन्दू धर्म के ऊँचे आदर्शों में श्रद्धा रखते हैं यह धारणा है कि आध्यात्मिक जीवन जीने के लिए व्यक्ति को सम्पूर्ण मानव गतिविधि से विरक्त होना पड़ता है। फिर भी, आध्यात्मिक जीवन को सबसे अधिक समर्थ अभिव्यक्ति उस व्यक्ति में प्राप्त होती है जो योग की शक्ति में तथा वेदान्त के विधान के अन्तर्गत सामान्य मानव जीवन यापन करता है। आन्तरिक और बाह्य जीवन के ऐसे संगम के द्वारा ही मानव जाति अन्ततः ऊपर उठ सकती है तथा शक्तिशाली और दिव्य बन सकती है।

हमारे धर्म का अन्तिम लक्ष्य है भौतिक प्रकृति के बन्धन से मुक्ति तथा व्यक्तिगत पुनर्जन्म से छुटकारा। कुछ उच्चतम आत्माओं ने, जिन्हें हम जानते हैं, अन्तिम शान्ति तथा शुद्धता से आकृष्ट होकर लक्ष्य तक अधिक तेजी से तथा आसानी से पहुंचने के लिए जीवन तथा शारीरिक कर्म से अपने को विरक्त कर लिया। सामान्य स्तर से ऊपर उठ कर पर्वत शिखरों के समान उन्होंने सब की दृष्टियों को आकृष्ट किया तथा इस निवर्तन को उच्चतम तथा सर्वथा आदेशात्मक हिन्दू आदर्श के रूप में स्थापित किया। यही कारण है कि श्रीकृष्ण ने इस बात पर इतना बल दिया है कि पूर्ण योगी को आवश्यकता न होने पर भी जीवन तथा मानव गतिविधि से चिपके रहना चाहिये जिससे लोग अपने बीच सर्वोत्तम लोगों का दृष्टान्त देख कर उनका अनुगमन कर अपने धर्म से मुख न मोड़ लें और वर्णसंकर भ्रान्ति

का राज्य न हो जाये। आदर्श योगी न पलायन करता है, न वह क्षीयमान बल होता है बल्कि सभी प्राणियों की भलाई में सदा रत रहता है या तो भागवत ऊर्जा के प्रवाह के द्वारा जो वह विश्व पर उड़ेल देता है अथवा मानवता के समक्ष स्वयं उसके प्रयाण तथा संघर्ष में नेता के रूप में खड़ा होकर मार्ग दर्शन करता है किन्तु फिर भी वह अपने कर्मों से बंधता नहीं और अपने व्यक्तित्व से कहीं बहुत श्रेष्ठ होता है।

वेदान्त तथा योग पहले ही एशिया की सीमा को लांघ चुके हैं और अब अमेरिका और यूरोप के जीवन तथा आचरण को प्रभावित करना आरम्भ कर रहे हैं। वे पश्चिमी विचारधारा में पहले से ही सैकड़ों अप्रत्यक्ष माध्यमों से प्रवेश कर रहे हैं। किन्तु ये छोटी-छोटी नदियाँ और भूमिगत धाराएं हैं। संसार पूर्णता के साथ दिव्य प्लावन ग्रहण करने के लिए भारत के उत्थान की प्रतीक्षा कर रहा है।

योग ज्ञान के लिए, प्रेम के लिए या कर्म के लिए भगवान के साथ आदान-प्रदान है या समागम है। योगी अपने को उस शक्ति के साथ सीधे सम्पर्क में रख देता है जो मनुष्य के अन्दर और बाहर सर्वज्ञ है तथा सर्वशक्तिमान है। वह असीम के साथ समस्वर रहता है। वह संसार पर उड़ेलने के लिए भागवत शक्ति का एक मार्ग बन जाता है चाहे वह शान्त परोपकार के रूप में हो या सक्रिय दया भाव के रूप में। जब मनुष्य अपने अहंकार का केंचुल निकाल कर ऊपर उठ जाता है और दूसरों के लिए जीता है और दूसरों के दुःख-सुख के साथ रहता है – जब वह पूर्णता के साथ कर्म करता है और प्रेम और उत्साह के साथ परिणाम की चिन्ता किये बिना करता है तथा न वह विजय की लालसा करता है और न पराजय से डरता है; -- जब वह अपना सब कर्म भगवान को निवेदित कर देता है और

अपना प्रत्येक विचार, अपनी वाणी और कर्म भागवत वेदी पर अर्पित कर देता है; – जब वह भय और घृणा से, जुगुप्सा, विरुचि तथा आसक्ति से मुक्त हो जाता है और प्राकृतिक शक्तियों के समान बिना जल्दी मचाये, बिना आराम किये, अवश्यम्भावी रूप से और पूर्णता के साथ कार्य करता है; – जब वह इस विचार से ऊपर उठ जाता है कि वह शरीर है या हृदय है या मन है अथवा इन सब का योग है और अपना सच्चा स्वरूप पा लेता है; – जब वह अपने अमर्त्य तत्व और मृत्यु की अवास्तविकता के प्रति सचेतन हो जाता है; – जब वह ज्ञान के अवतरण की अनुभूति कर लेता है और यह महसूस करता है कि वह तो स्वयं निष्क्रिय है परन्तु भागवत शक्ति उसके मन, उसकी वाणी, उसकी इन्द्रियों तथा उसके अंग-अंग के माध्यम से अबाध रूप से कार्य कर रही है; – जब वह इस प्रकार, जो कुछ वह है, जो कुछ वह करता है, जो कुछ उसके पास है, सर्वेश्वर को, मानवजाति के प्रेमी और सहायक को समर्पित कर देता है और स्थायी रूप से उन्हीं में निवास करता है तथा शोक, अशान्ति अथवा मिथ्या उत्तेजना से प्रभावित नहीं होता – यही योग है। प्राणायाम तथा आसन, एकाग्रता, आराधना, धार्मिक समारोह, धार्मिक प्रक्रियाएं अपने आप में योग नहीं हैं बल्कि योग के साधन हैं। और न योग कठिन या खतरनाक मार्ग है, यह उन सबके लिए सुरक्षित तथा सरल मार्ग है जो आन्तरिक मार्गदर्शक तथा गुरु की शरण लेते हैं। सभी मनुष्य मूल रूप से इसके लिए समर्थ होते हैं। ऐसा कोई व्यक्ति नहीं होता जिसकी प्रकृति में शक्ति या श्रद्धा या प्रेम विकसित या सुषुप्त रूप में नहीं पाया जाता और इनमें से कोई भी एक विशेषता योगी के लिए पर्याप्त सहारा है। यह सच है कि सभी लोग इस मार्ग पर उच्चतम लक्ष्य को एक ही जन्म में नहीं सिद्ध कर

सकते परन्तु सब लोग आगे बढ़ सकते हैं और जिस अनुपात में मनुष्य इस पथ पर आगे बढ़ता है उसी अनुपात में उसे शान्ति, शक्ति तथा आनन्द प्राप्त होता जाता है। और इस धर्म की न्यून मात्रा भी मनुष्य या राष्ट्र को बहुत बड़े त्रास से मुक्त कर देती है।

यह सोचना भूल है, हम पुनः कहते हैं कि यह सोचना भूल है कि आध्यात्मिकता जीवन से कटी हुई पृथक् कोई चीज है। ईशा उपनिषद का कथन है कि "सब कुछ का त्याग कर दो जिससे तुम सबका आनन्द ले सको, किसी के धन पर लालच की दृष्टि न डालो। बल्कि इस संसार में अपना कर्त्तव्य करते हुए एक सौ वर्ष जीने की अभीप्सा करो। इसके अतिरिक्त अपने कर्म बन्धन से छुटकारा का कोई अन्य उपाय नहीं है।" यह सोचना भूल है कि धर्म की ऊँचाइयाँ इस संसार के संघर्षों से ऊपर हैं। श्रीकृष्ण बार-बार संघर्ष पर जोर देकर अर्जुन से कहते हैं, "युद्ध करो और शत्रुओं को परास्त करो!" "मुझे स्मरण कर और युद्ध कर!" "अपने सभी कर्मों को अध्यात्म की भावना से पूर्ण होकर मुझे दे दो और लालसा तथा स्वार्थमय दावों से मुक्त होकर युद्ध करो, युद्ध करो ताकि तुम आत्मा की उत्तेजना से मुक्त हो सको।" यह कल्पना करना भूल है कि धार्मिक व्यक्ति सामान्य गतिविधियों का त्याग नहीं करने पर भी वह इतना सात्विक, इतना सन्तवत, इतना स्नेहिल अथवा भावनाशून्य हो जाता है कि संसार के रूखे काम नहीं कर सकता। ठीक इसके विपरीत गीता के इस उत्तर से अधिक कुछ भी चरम और अटल नहीं हो सकता कि "जो भी व्यक्ति अपनी प्रकृति में अहं से मुक्त हो चुका है, जो भी व्यक्ति अपने कर्मफल पाने को उत्सुक नहीं है, यदि ऐसा व्यक्ति पूरे संसार का भी संहार कर दे तब भी वह किसी को नहीं मारता और न वह कर्मफल से बंधा है।" विनाश के उस क्षेत्र में

अर्जुन का रथ चलानेवाला कुरुक्षेत्र का सारथी कर्मयोग का प्रतीक और चित्रण है। क्योंकि शरीर रथ है तथा इन्द्रियाँ रथ के थोड़े है और संसार के रक्तरंजित तथा दलदली मार्गों से होते हुए श्रीकृष्ण वैकुण्ठ के लक्ष्य तक जाने का मानव आत्मा को मार्ग दिखाते हैं।

CWSA 13: 9 — श्रीअरविन्द

***

कुछ लोगों के द्वारा संसार के साथ भौतिक अथवा मानसिक सम्पर्क से अलग होकर योग की अनन्य साधना करने से यह गलत धारणा बन गई है कि यह विज्ञान कुछ गूढ़, दूरस्थ तथा अवास्तविक है।

वास्तव में योग के विषय में कुछ भी आन्तरिक रूप से प्रच्छन्न, गुह्य अथवा रहस्यमय नहीं है। योग मानव मनोविज्ञान के कुछ विधानों के बारे में, शरीर के ऊपर मन की शक्ति के बारे में तथा मन के ऊपर आन्तरिक आत्मन की शक्ति के बारे में कुछ ज्ञान पर आधारित है जो सामान्य रूप से सिद्ध नहीं किये जाते और अब तक रहस्यवादियों के द्वारा यह धारणा बना ली गई है कि अपने परिणामों में ये ज्ञान इतने महत्वपूर्ण हैं कि जब तक इनके उपयोग की शिक्षा नहीं दी जाती इन्हें उद्घाटित नहीं किया जाना चाहिये। इसलिए योग के शिक्षार्थियों के लिए यह एक स्थापित नियम बना दिया गया कि योग की अपनी आन्तरिक अनुभूतियों के बारे में वे मौन रहें और विकसित योगी यथासम्भव अपने को गुप्त रखें। इसके बावजूद योग के भौतिक या नैतिक और बौद्धिक पक्षों के विषय में शोध-ग्रन्थों तथा पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन होता रहा। और न ही इससे उन बड़ी-बड़ी आत्माओं का मानवता के लिए उत्कट प्रेम के कारण

उनके प्रति आत्मोद्घाटन करना तथा विश्व को अपनी कुछ शक्ति प्रदान करना बन्द हुआ जिन्होंने सामान्य वैज्ञानिक अनुशासन के द्वारा नहीं बल्कि अपने बल और भागवत कृपा के बल पर योग शक्ति सिद्ध की थी। ऐसे महान पुरुषों में थे – ईसामसीह, मुहम्मद, चैतन्य, ऐसे ही थे रामकृष्ण, विवेकानन्द। यह दृष्टिकोण अभी भी रूढ़िवाद से ग्रस्त है कि योग की अनुभूतियाँ अदीक्षित के समक्ष नहीं प्रकट करनी चाहिये। किन्तु अब एक नये युग का उदय हो रहा है जिसमें पुराने विधानों को संशोधित करना होगा।

हमलोग अपनी प्रकृति के दास हैं और हम जब इसकी अधीनता से मुक्त हुए प्रतीत होते हैं तब हम अपने पर्यावरण के इससे भी अधिक बदतर दास बन जाते हैं जिसे परिवेश की शक्तियों द्वारा छलबल से चालित किया जाता है।

भौतिकवाद के इन्हीं मिथ्या तथा खतरनाक सिद्धान्तों से – जो मनुष्य के भविष्य के विनाश की ओर अभिमुख लगते हैं और उसके क्रमविकास में बाधक हैं – बचने का योग हमें एक साधन देता है। यह इसके विपरीत, जड़द्रव्य से मनुष्य की मुक्ति पर बल देता है और उसे उस मुक्ति पर दावा करने का एक साधन देता है। योगियों की प्रथम महान प्रारम्भिक खोज थी मन तथा हृदय की अनुभूतियों के विश्लेषण का एक साधन। योग के द्वारा व्यक्ति मन को पृथक कर सकता है, इसकी कार्यप्रणाली का निरीक्षण इस तरह कर सकता है मानो सूक्ष्मदर्शी यंत्र के नीचे रखी हो, अन्तःकरण के विविध भागों के प्रत्येक सूक्ष्म कार्य को अलग कर सकता है – आन्तरिक अंग, प्रत्येक मानसिक तथा नैतिक निकाय, इसकी अलग-अलग कार्यप्रणाली का तथा साथ ही अन्य कार्य प्रणालियों एवं निकायों के साथ सम्बन्धों का परीक्षण कर सकता है तथा मन की क्रियाओं का सूक्ष्मतर तथा

सर्वदा सूक्ष्मतर उद्‌गमों के साथ सम्बन्ध मिला सकता है और जिस प्रकार भौतिक विश्लेषण एक ऐसी आदि सत्ता का पता लगा लेता है जहाँ से सबकुछ आरम्भ होता है उसी प्रकार योग का विश्लेषण भी एक आदि आध्यात्मिक सत्ता की खोज कर लेता है जो समस्त का उद्‌गम है। यह चैत्य केन्द्र की पहचान करने में भी समर्थ है जिसके चारों ओर सभी चैत्य तथ्य एकत्र होते हैं जिससे व्यक्तित्व की जड़ों को सुदृढ़ किया जा सके। इस विश्लेषणमें इसकी पहली खोज यह है कि मन पूर्णतः अपने को बाह्य पदार्थों से पृथक कर सकता है और यह अपने अन्दर अपने आप ही कार्य कर सकता है। यह सच है कि यह हमें बहुत दूर नहीं ले जाता क्योंकि हो सकता है कि यह केवल उस सामग्री का प्रयोग कर रहा है जो इसकी अतीत की अनुभूतियों द्वारा पहले से ही एकत्र है। किन्तु इसकी दूसरी खोज यह है कि यह पदार्थों से जितना दूर अपने को हटाता है उतना ही सशक्त रूप से, सुनिश्चित रूप से, उतनी ही क्षिप्र गति से मन तीव्र स्पष्टता के साथ, एक विजयपूर्ण तथा सर्वोच्च अनासक्ति के साथ कार्य कर सकता है। यह एक ऐसी अनुभूति है जो इस वैज्ञानिक सिद्धान्त का विरोध करती प्रतीत होती है कि मन इन्द्रियों का अपने अन्दर प्रत्याहार कर सकता है तथा उन ढेर सारे प्रपंचों के साथ सम्बन्ध रखने के लिए उन्हें बुला सकता है जिसके प्रति वह बाहरी प्रपंचों में व्यस्त रहने के कारण बिलकुल अनजान रहता है। विज्ञान स्वभावतः इन्हें विभ्रान्ति कह कर इसकी सच्चाई पर सन्देह करेगा। इसका उत्तर यह है कि ये प्रपंच नियमित, सरल तथा बोधगम्य विधानों के द्वारा एक दूसरे से सम्बन्धित हैं तथा वे एक अपनी दुनिया बनाते हैं जो भौतिक जगत पर क्रिया करनेवाले विचार से स्वतन्त्र हैं। यहाँ भी विज्ञान के पास यह सम्भव उत्तर है कि यह अनुमानित दुनिया

भौतिक संसार के दिमाग में मात्र एक काल्पनिक प्रतिबिम्ब है। तथा इन सूक्ष्म प्रतिभासों की निश्चयात्मकता तथा अप्रत्याशा के तथा हमारे संकल्प और कल्पना से उनकी स्वाधीनता से निकाले गये किसी भी तर्क के विरुद्ध यह अचेतन मस्तिष्क क्रिया तथा, मैं समझता हूँ, अचेतन कल्पना के सिद्धान्त का भी हमेशा विरोध कर सकता है। चौथी खोज यह है कि मन बाह्य पदार्थ से न केवल स्वतन्त्र है बल्कि इसका स्वामी है। यह बाह्य उद्दीपन को न केवल अस्वीकार और नियन्त्रित कर सकता है बल्कि प्रत्यक्ष रूप से वैश्व भौतिक विधानों - जैसे गुरुत्वाकर्षण को चुनौती दे सकता है तथा प्राकृतिक विधानों को निरर्थक कर सकता है जो वास्तव में केवल भौतिक प्रकृति के विधान हैं – निम्न कोटि के तथा चैत्य विधानों के अधीनस्थ हैं, क्योंकि जड़ पदार्थ मन की उपज है न कि मन जड़ पदार्थ की। यह योग की निर्णायक खोज है, भौतिकवाद का अन्तिम प्रतिरोध। इसके पश्चात आती है यह उच्चतम सिद्धि कि हमारे भीतर अतुलनीय शक्ति, अतुलनीय बुद्धि, अतुलनीय आनन्द का उद्‌गम है –दौर्बल्य, अज्ञान, पीड़ा की संभावना से बहुत ऊपर जिसे हम श्रमसाध्य अवस्थाओं में, किन्तु असम्भव नहीं – पहुँच के भीतर ला सकते हैं, उसका उपयोग या उसका आनन्द ले सकते हैं। इसी को उपनिषदें ब्रह्म कहती हैं, वह आदि सत्ता जिससे सभी वस्तुएं उत्पन्न हुई हैं, जिसमें वे निवास करती हैं और जिसमें वे विलीन हो जाती हैं। यह है भगवान और उसके साथ आदान-प्रदान योग का उच्चतम लक्ष्य है – एक ऐसा आदान-प्रदान जो ज्ञान, कर्म और आनन्द देता है।

CWSA 13:13 – श्रीअरविन्द

पूर्ण योग का उद्देश्य

योग का प्रथम उद्देश्य है चेतना को भगवान के प्रति उद्घाटित करना तथा आन्तरिक चेतना में अधिक से अधिक निवास करना और बाह्य जीवन पर यहीं से क्रिया करना, अन्तरतम चैत्य चेतना को सामने लाना तथा चैत्य की शक्ति से सत्ता का शुद्धीकरण तथा परिवर्तन जिससे यह रूपान्तर के लिए तैयार हो सके तथा भागवत ज्ञान, भागवत संकल्प तथा भागवत प्रेम के साथ एकत्व सिद्ध कर सके।

दूसरा उद्देश्य है यौगिक चेतना का विकास यानी सभी स्तरों पर सत्ता का विश्वव्यापीकरण, वैश्व सत्ता तथा वैश्व शक्तियों के प्रति सचेतन बनना तथा सभी स्तरों पर अधिमन तक भगवान के साथ एकत्व में निवास करना।

तीसरा उद्देश्य है अधिमन से परे अतिमानसिक चेतना के माध्यम से परात्पर भगवान के सम्पर्क में आना, चेतना तथा प्रकृति का अतिमानसीकरण करना तथा पार्थिव प्रकृति में गत्यात्मक भागवत सत्य और रूपान्तरकारी अवतरण की सिद्धि के लिए अपने को एक यन्त्र बनाना।

CWSA 29: 509 — श्रीअरविन्द

पूर्ण योग का स्वरूप

यह एक सम्पूर्ण भागवत सिद्धि, एक सम्पूर्ण आत्म सिद्धि, हमारी सत्ता तथा चेतना की एक सम्पूर्ण पूर्ति, हमारी प्रकृति के एक सम्पूर्ण रूपान्तरण का मार्ग है — और इसमें निहित है यहीं पृथ्वी पर ही जीवन की सम्पूर्ण पूर्णता और न केवल कहीं और एक शाश्वत

पूर्णता की ओर वापसी। यह तो है उद्देश्य किन्तु इसकी विधि में भी वही पूर्णता है, क्योंकि उद्देश्य की पूर्णता विधि की पूर्णता के बिना, हमारी सत्ता तथा प्रकृति के सभी भागों में, तरीकों तथा गतियों में उसके प्रति जिसे हमें सिद्ध करना है एक पूर्ण उन्मुखता, उद्घाटन, आत्म-समर्पण के बिना नहीं सिद्ध की जा सकती।

हमारे मन, संकल्प, हृदय, प्राण, शरीर को, हमारे बाह्य, आन्तरिक तथा अन्तरतम सत्ता को, हमारे अतिचेतन, अवचेतन तथा सचेतन भागों को अर्पित कर देना होगा, सबको इस सिद्धि तथा रूपान्तर का एक साधन, एक क्षेत्र बन जाना होगा तथा प्रदीपन तथा मानव से भागवत चेतना और प्रकृति में रूपान्तरण में भाग लेना होगा। यह है पूर्ण योग का स्वरूप।

***

पूर्ण योग हमारी अन्तरात्मा के संवर्धन तथा हमारी प्रकृति के विकास का एक मात्र किन्तु बहुपक्षीय मार्ग है। सम्पूर्ण भागवत सत्य की एक एकल तथा सर्वसमाविष्टकारी सिद्धि की एक सम्पूर्ण अनुभूति इसका परिणाम है। इसके अन्दर निहित है सम्पूर्ण सत्ता तथा प्रकृति के प्रत्येक भाग का आमूल परिवर्तन तथा रूपान्तरण। हमारी सत्ता अज्ञान की मानवीय मानसिक-प्राणिक-भौतिक प्रकृति का एक आन्तरिक गठबन्धन है। इसे एक आध्यात्मिक तथा अतिमानसिक चेतना में रूपान्तरित किया जाता है। यह असीम तथा वैश्व तथा सम्पूर्ण संकल्प, प्रेम, आनन्द तथा ज्ञान के एक सामंजस्य में एक भागवत एकत्व बन जाता है।

अनन्त सत्य अपने आपको हमारी सीमित चेतना के समक्ष अनन्त पक्षों में प्रस्तुत करता है । योग के विभिन्न मार्ग एक या दो पक्षों को सिद्ध करने का प्रयास करते हैं। पूणयोग अपनी गति में उन

सबको समाविष्ट कर लेता है, किसी एक के साथ अपने को सीमित नहीं करता। इसकी एकमात्र कामना होती है सम्पूर्ण भगवत्ता को समाविष्ट करना। (*समग्रम माम् - गीता*)

अनन्त सत्य का उच्चतम पक्ष है विश्वातीत निरपेक्ष, अचिन्तनीय, वर्णनातीत, विश्वातीत।

***

वही योग परिपूर्ण है जो इस विश्व में भगवान के उद्देश्य को हमें अपने अन्दर पूर्ण रूप से पूरा करने में समर्थ बनाये।

वह समस्त योग जो आत्मा को वैश्व-सत्ता से पूरी तरह बाहर ले जाये वह भागवत तपस्या का एक ऊँचा किन्तु संकीर्ण विशिष्टीकरण है।

हमारे अन्दर भगवान का उद्देश्य है लीला की अवस्थाओं के अधीन वैश्व चेतना में उसकी दिव्य सत्ता को परिपूर्ण करना।

जहाँ तक विश्व का सम्बन्ध है, भगवान अपने आप को त्रिविध रूप से अभिव्यक्त करते हैं – व्यष्टि में, विश्व में और उसमें जो विश्वातीत है।

व्यष्टि में भगवान को परिपूर्ण करने के लिए हमें व्यष्टि को अतिक्रम करना होगा। सीमित अहंकार को हटाना और वैश्व चेतना को अधिकृत करना हमारी साधना का प्रथम उद्देश्य है।

विश्व में भगवान को परिपूर्ण करने के लिए, व्यक्तिगत रूप से, हमें विश्व को अतिक्रम करना होगा। विश्वातीत चेतना में आरोहण हमारी साधना का दूसरा उद्देश्य है।

CWSA 12: 358-59 – श्रीअरविन्द

अपनी सम्पूर्ण सत्ता और हर प्रकार से अपनी सत्ता के सभी

भागों के साथ भागवत सत्य की सम्पूर्ण चेतना में प्रवेश करना तथा अपनी वर्तमान अज्ञानी व सीमित प्रकृति को भागवत प्रकृति में रूपान्तरित करना – जिससे यह भागवत सत्य का यन्त्र तथा अभिव्यक्ति बन सके जो हम अपने स्वयं में और सार तत्व में हैं - – यह है हमारी सत्ता की पूर्ण परिपूर्ति और यही है समग्र योग।

चाहे चिन्तनशील मन के मार्ग से या हृदय अथवा कर्म में संकल्प के माध्यम से या मनोवैज्ञानिक प्रकृति-उपादान के रूपान्तरण के द्वारा भगवान में प्रवेश करना अथवा शरीर में प्राणिक शक्ति को मुक्त करना पर्याप्त नहीं है, यह सब पर्याप्त नहीं है। इसे इन सबके साथ, एक साथ ही, किया जाना चाहिये तथा हमारे संवेदन तथा शरीर की चेतना तक के परिवर्तन के द्वारा यहाँ तक कि भौतिक निश्चेतना तक को भगवान के प्रति सचेतन होना होगा तथा भगवान के साथ ही ज्योतिर्मय बनना होगा।

भगवान के साथ एक हो जाना, भगवान में और भगवान के साथ निवास करना, भगवान की प्रकृति के साथ एकत्व, हमारे योग का लक्ष्य होना चाहिये।

CWSA 12: 356 — श्रीअरविन्द

पूर्ण योग में हमारी आध्यात्मिक स्थिति का एक क्रमिक अनुसंधान होता है। इस क्रमिकता के साथ होता है हमारी प्रकृति का एक गत्यात्मक नवसृजन। एक त्रिविध रूपान्तरण इसकी प्रक्रिया तथा इसके समस्त महत्व का रहस्योद्घाटन है।

प्रथम अनुसन्धान होता है मन, प्राण तथा शरीर के अवरोधक छद्म मुखावरण से आत्मा का अनावरण, – चैत्य सत्ता, हमारी प्रकृति का दिव्य तत्व जो इसे स्थायित्व तथा अमरत्व प्रदान करता है, जो हमारे यन्त्रों का खुला शासक बन जाता है तथा उन्हें सचेतन

आध्यात्मिक अभिकर्ताओं में रूपान्तरित कर देता है जिससे वे अब अज्ञान के परिवर्तनशील संरूपण न बने रहें।

CWSA 12: 369 — श्रीअरविन्द

योग का उद्देश्य है भागवत उपस्थिति तथा चेतना में प्रवेश करना तथा इसके द्वारा अधिकृत हो जाना, केवल भगवान के लिए भगवान से प्रेम करना, अपनी प्रकृति से भगवान की प्रकृति की ओर मुड़ना तथा अपने संकल्प और कार्य और जीवन में भगवान का यन्त्र बनना। इसका उद्देश्य एक बड़ा योगी अथवा एक अतिमानव (यद्यपि यह आ सकता है) बनना अथवा अहंकार की शक्ति, घमण्ड या मनोरंजन के लिए भगवान को हथियाना नहीं है। यह मोक्ष के लिए नहीं है यद्यपि इसके द्वारा मुक्ति आ सकती है तथा अन्य सब चीजें भी आ सकती हैं, किन्तु हमारा उद्देश्य यह सब कभी नहीं होना चाहिये। एक मात्र भगवान हमारा लक्ष्य है।

इस योग को केवल एक अतिमानव बनने के विचार से करना एक प्राणिक अहंकार का कार्य होगा जिससे इसका अपना उद्देश्य ही परास्त हो जायेगा। जो लोग अपने पूर्वाग्रहों के सामने यह लक्ष्य रखते हैं वे आध्यात्मिक दृष्टि से तथा अन्यथा भी हमेशा कष्ट झेलते हैं।

इस योग का लक्ष्य है; प्रथम, पृथक्कारी अहं को भागवत चेतना में विलीन करके इसमें प्रवेश करना (प्रसंगवश, ऐसा करने से व्यक्ति को अपना सच्चा व्यक्तित्व प्राप्त हो जाता है जो सीमित, दम्भी, स्वार्थी मानव अहंकार नहीं बल्कि भगवान का एक अंश है)। दूसरा, मन, प्राण तथा शरीर को रूपान्तरित करने के लिए अतिमानसिक चेतना को पृथ्वी पर नीचे लाना। अन्य सब इन दो लक्ष्यों के परिणाम हो सकते हैं, योग का प्राथमिक लक्ष्य नहीं।

CWSA 29: 503 — श्रीअरविन्द

पूर्णयोग के अन्य उद्देश्य

१. शक्ति प्राप्त करना अथवा दूसरों से अधिक शक्तिशाली बनना अथवा महान सिद्धियाँ प्राप्त करना अथवा महान या अद्‌भुत या चमत्कारी चीजें करना योग का उद्देश्य नहीं है।

२. योग का उद्देश्य एक महान योगी बनना या एक अतिमानव बनना नहीं है। योग करने का यह अहंकारात्मक दृष्टिकोण है और इससे कोई लाभ न होगा। इसे बिल्कुल भूल जाओ।

३. अतिमानसिक के विषय में चर्चा करना और अपने अन्दर इसे अवतरित करने के लिए सोचना सबसे अधिक खतरनाक है। साधक को जो अभीप्सा करनी चाहिये वह है भगवान की ओर पूर्ण उद्‌घाटन की, उसकी चेतना में चैत्य परिवर्तन तथा आध्यात्मिक परिवर्तन की। चेतना के उस परिवर्तन के आवश्यक अवयव हैं निःस्वार्थता, निष्कामना, विनम्रता, भक्ति, समर्पण, अचंचलता, समानता, शान्ति, अचंचल सत्यनिष्ठा। जब तक उसमें चैत्य तथा आध्यात्मिक परिवर्तन नहीं आता तब तक अतिमानसिक बनने के लिए सोचना हास्यास्पद तथा अक्खड़ हास्यास्पद होगा।

ये सारे अहंकारात्मक विचार, यदि इनमें आसक्त हुआ जाये, केवल अहंकार को बढ़ाते हैं, साधना को नष्ट कर देते हैं और गम्भीर आध्यात्मिक खतरों की ओर ले जाते हैं। इन्हें पूरी तरह इनकार कर दिया जाना चाहिये।

***

भगवान के साथ पूर्ण एकता में रहना अन्तिम लक्ष्य है। जब किसी व्यक्ति ने भगवान के साथ किसी प्रकार की निरन्तर एकता सिद्ध कर ली है तब उसे योगी कहा जा सकता है, किन्तु एकता को

पूर्ण बनाने की आवश्यकता है। कुछ योगियों ने केवल आध्यात्मिक धरातल पर एकता प्राप्त की है, कुछ अन्य मानसिक धरातल पर तथा हृदय में तथा कुछ अन्य ने प्राण में भी एकता सिद्ध कर ली है। हमारे योग में हमलोगों का लक्ष्य है भौतिक चेतना में भी तथा अतिमानसिक धरातल पर एकता प्राप्त करना।

CWSA 29: 504, 508 — श्रीअरविन्द

पूर्ण योग का हृदय एक त्रिविध आध्यात्मिक प्रयास में है। यह हमारी सम्पूर्ण सत्ता के द्वारा तथा सत्ता के सभी भागों के माध्यम से भगवान की, भगवान के समस्त की सिद्धि है। इसके अन्दर निहित है एक अनुसन्धान तथा सामंजस्य, हमारी समस्त चेतना का एकीकरण — अन्तस्तलीय तथा अतितलीय, जो अब अतिचेतन है तथा अवचेतन है साथ ही जो अब चेतन है तथा यहाँ एक आध्यात्मिक यांत्रिकता के लिए भगवान को समर्पित है; इस चेतना के एक क्रमिक विकास में यह पराकाष्ठा है (वाक्य अधूरा छूट गया)।

पूर्ण योग अपने लक्ष्य के समाकलन के द्वारा अथवा इसकी पूर्णता के द्वारा, इसकी प्रक्रिया की पूर्णता के द्वारा तथा उस आधार की पूर्णता के द्वारा जो अपनी प्रक्रिया में यह आच्छादित करता है, पूर्ण है। इस प्रकार का समाकलन अपनी प्रकृति में जटिल ही होगा, बहुपक्षीय तथा उलझा हुआ। केवल प्रमुख संकेत लिखित में दिये जा सकते हैं, क्योंकि विस्तार की अधिकता चित्र को भ्रमित कर देगी।

पूर्ण योग अन्य योगों से भिन्न क्यों है ?

आधारभूत अन्तर इस शिक्षा में है कि एक गत्यात्मक भागवत सत्य है (अतिमानस) और यह कि अज्ञान के वर्तमान संसार में वह

सत्य अवतरित हो सकता है, एक नयी सत्य चेतना का सृजन कर सकता है तथा जीवन का दिव्यीकरण कर सकता है। पुराने योग सीधे मन से परम प्रभु तक जाते हैं, समस्त गत्यात्मक सृष्टि को अज्ञान, माया अथवा लीला मानते हैं। जब तुम निश्चल तथा अपरिवर्तनशील भागवत सत्य में प्रवेश करते हो तब वे कहते हैं कि तुम वैश्व सत्ता से बाहर आ जाओ।

CWSA 28: 103 — श्रीअरविन्द

इस योग का लक्ष्य है अतिमानस में भगवान के साथ सचेतन ऐक्य तथा प्रकृति का रूपान्तरण। साधारण योग मन से सीधे वैश्व शान्ति की किसी निराकार स्थिति में चले जाते हैं और इसके माध्यम से ऊपर की ओर उच्चतम में अंतर्धान हो जाने का प्रयास करते हैं। इस योग का उद्देश्य है मन का अतिक्रमण करना तथा सच्चिदानन्द के भागवत सत्य में प्रवेश करना जो न केवल निश्चल है बल्कि गत्यात्मक भी है -- तथा समस्त सत्ता को उसी सत्य में उठाना।

CWSA 28:104 — श्रीअरविन्द

पुराने योगों में उस आत्मन की अनुभूति की खोज की जाती थी जो सदा मुक्त है और भगवान के साथ युक्त है। उस अवस्था में प्रकृति को सिर्फ इतना ही परिवर्तित करना पड़ता था कि वह उस ज्ञान तथा अनुभूति में बाधा न बने। भौतिक तक सम्पूर्ण रूपान्तर केवल कुछेक लोग चाहते थे और वह भी किसी अन्य चीज की अपेक्षा "सिद्धि" के लिए अधिक, पार्थिव चेतना में एक नई प्रकृति की अभिव्यक्ति के लिए नहीं।

CWSA 28:104 — श्रीअरविन्द

यहाँ के योगाभ्यास का उद्देश्य दूसरों से भिन्न है – क्योंकि इसका लक्ष्य न केवल सामान्य अज्ञानमय चेतना से बाहर दिव्य चेतना में उठना बल्कि उस दिव्य चेतना की अतिमानसिक शक्ति को मन, प्राण तथा शरीर के अज्ञान में उतारना, उन्हें रूपान्तरित करना, यहाँ भगवान को अभिव्यक्त करना तथा जड़-द्रव्य में एक दिव्य जीवन का सृजन करना है। यह अत्यन्त कठिन उद्देश्य एवं कठिन योग है। बहुत लोगों को अथवा अधिकांश लोगों को यह असम्भव प्रतीत होगा। सामान्य अज्ञानमय वैश्व चेतना की सभी सुस्थापित शक्तियाँ इसके विरुद्ध हैं तथा उसे इनकार करते हैं और इसे रोकने का प्रयास करते हैं तथा साधक अनुभव करेगा कि उसके अपने मन, प्राण तथा शरीर इसकी सिद्धि के मार्ग में सबसे अधिक अनम्य रुकावटें पैदा कर रहे हैं। यदि तुम इस आदर्श को पूरे हृदय से स्वीकार करते हो, सभी कठिनाइयों का सामना करते हो, अतीत व इसके बन्धनों को पीछे छोड़ देते हो और इस दिव्य सम्भावना के लिए हर चीज को छोड़ने के लिए तैयार हो तभी तुम अनुभव के द्वारा इसके पीछे के सत्य को जान सकते हो।

इय योग की साधना किसी निश्चित मानसिक शिक्षा या ध्यान, मंत्र आदि के निर्धारित रूपों से आरम्भ नहीं होती बल्कि अभीप्सा के द्वारा भीतर या ऊपर की ओर, आत्म-केन्द्रण के द्वारा प्रभाव की ओर, हमारे ऊपर भागवत शक्ति तथा इसकी कार्यप्रणाली, हृदय में भागवत उपस्थिति की ओर आत्मोद्घाटन द्वारा तथा इन चीजों के प्रति सभी विरोधी तत्वों के त्याग द्वारा होती है। केवल श्रद्धा, अभीप्सा तथा समर्पण के द्वारा ही यह आत्मोद्घाटन आ सकता है।

CWSA 29:505 – श्रीअरविन्द

पुराने योगों की तुलना में यह योग किस प्रकार या क्यों नया है?

१. क्योंकि इसका लक्ष्य विश्व तथा जीवन से पलायन कर स्वर्ग या निर्वाण में जाना नहीं है बल्कि इसका गौण या आकस्मिक नहीं बल्कि प्रमुख तथा केन्द्रीय उद्देश्य है जीवन तथा संसार का रूपान्तर। यदि दूसरे योगों में अवरोहण है, फिर भी वह मार्ग में एक केवल संयोग है अथवा आरोहण के परिणाम स्वरूप है – आरोहण वास्तविक वस्तु है। यहाँ आरोहण पहली चीज है किन्तु अवरोहण के लिए एक साधन है। यह उस नई चेतना का अवतरण है जो आरोहण के द्वारा उपलब्ध की गई है। यही इस साधना का मोहर है। तंत्र तथा वैष्णव मत भी जीवन से मुक्ति तक ही सीमित हैं। यहाँ साधना का लक्ष्य जीवन में भागवत परिपूर्ति है।

२. क्योंकि यहाँ लक्ष्य भागवत सिद्धि की केवल व्यक्तिगत उपलब्धि की खोज नहीं है बल्कि यहाँ पार्थिव चेतना के लिए कुछ उपलब्ध करना, केवल अति वैश्व नहीं बल्कि एक वैश्व उपलब्धि प्राप्त करना है। जो चीज प्राप्त करनी है वह चेतना की एक ऐसी शक्ति – अतिमानसिक शक्ति है जो पार्थिव प्रकृति में यहाँ तक कि आध्यात्मिक जीवन में भी अभी तक संघटित नहीं है अथवा प्रत्यक्ष रूप से सक्रिय नहीं है बल्कि इसे अभी भी संघटित करना और प्रत्यक्ष रूप से सक्रिय बनाना बाकी है।

३. क्योंकि इस उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए जिस विधि की घोषणा की गई है वह उतना ही पूर्ण और समग्र है जितना पूर्ण लक्ष्य निर्धारित किया गया है – यानी चेतना और प्रकृति का पूर्ण और समग्र रूपान्तर। आंशिक क्रिया के रूप में पुरानी विधियों को समाविष्ट किया गया है तथा दूसरी विशिष्ट विधियों में कुछ जोड़ा गया है। (सम्पूर्ण रूप में) ऐसी विधि अथवा पुराने योगों में कुछ ऐसी

चीज घोषित अथवा सिद्धि के रूप में मुझे कहीं नहीं मिली। यदि मुझे मिल जाती तब मैं एक नया पथ तैयार करने में तथा ३० सालों की खोज और आन्तरिक सृजन में समय नष्ट न करता तथा बनी बनाई पूर्ण रूप से मानचित्रित पक्की सड़क पर सुरक्षित रूप से धीमी चाल से लक्ष्य तक आराम से पहुँच जाता। हमारा योग पुराने मार्गों पर पुनर्गमन नहीं है बल्कि एक आध्यात्मिक साहसिक यात्रा है।

CWSA 1:100 — श्रीअरविन्द

तीन चरण

इसके तीन चरण हैं : प्रथम, एक व्यष्टि बनना है। दूसरा है, व्यष्टि का समर्पण जिससे वह पूर्ण रूप से भगवान को अर्पित हो जाये और उनके साथ तदात्म बन जाये। तीसरा है, कि भगवान इस व्यष्टि को अपने अधिकार में ले लें तथा अपनी ही छवि पर उसे एक सत्ता में रूपान्तरित कर दें यानी वह भी भगवान बन जाये।

सामान्यतः, सभी योग दूसरे चरण पर रुक गये। जब कोई अपने व्यष्टि को पूर्ण रूप से समर्पित करने में सफल हो जाता और बिना कुछ बचाये भगवान के साथ तदात्म होने के लिए अपना सर्वस्व दे देता, तब वह यह समझता कि उसका कार्य समाप्त हो गया, कि सब कुछ पूर्ण हो गया।

परन्तु हमलोग वहीं से आरम्भ करते हैं और कहते हैं, "नहीं, यह केवल आरम्भ है। हम चाहते हैं कि भगवान, जिनके साथ हम तदात्म हो गये हैं, हमारे व्यक्तित्व में प्रवेश करें और इसे दिव्य विश्व में क्रियाशील दिव्य व्यक्तित्व में बदल दें।" और इसी को हम रूपान्तर कहते हैं। किन्तु दूसरे को पहले होना चाहिये, होना ही होगा। यदि वह नहीं होता तब तीसरे के होने की कोई सम्भावना

नहीं। व्यक्ति प्रथम चरण से तीसरे चरण में नहीं जा सकता। व्यक्ति को दूसरे चरण से गुजरना पड़ेगा।

CWM 7: 402 — श्रीमाँ

मनुष्य के मन से ऊपर अनेक स्तर या लोक हैं – अतिमानसिक लोक एक मात्र नहीं है, तथा उन सब पर आत्मन की सिद्धि उपलब्ध की जा सकती है – क्योंकि वे सभी आध्यात्मिक स्तर या लोक हैं।

मन, प्राण तथा भौतिक केवल सतही चेतना पर असमाधेय रूप से एक साथ मिले जुले रहते हैं – आन्तरिक मन, आन्तरिक प्राण, आन्तरिक भौतिक एक दूसरे से अलग हैं। जो पुराने योगों के माध्यम से आत्मन की सिद्धि चाहते हैं वे अपने आप को मन, प्राण तथा शरीर से अलग कर लेते हैं तथा इन सब के आत्म तत्व को इनसे भिन्न रूप में सिद्ध करते हैं। अतिमानस की मदद के बिना भी मन, प्राण तथा भौतिक को एक दूसरे से अलग-अलग करना पूर्ण रूप से सरल है। यह सामान्य योगों के द्वारा किया जाता है। इस योग तथा पुराने योगों में अन्तर यह नहीं है कि वे असमर्थ हैं और इन चीजों को नहीं कर सकते – वे इसे अच्छी तरह कर सकते हैं – परन्तु क्योंकि वे आत्मन की सिद्धि से निर्वाण या किसी स्वर्ग की ओर बढ़ जाते हैं तथा जीवन का त्याग कर देते हैं जबकि हमलोगों का योग जीवन का त्याग नहीं करता। पार्थिव जीवन तथा सत्ता के रूपान्तरण के लिए अतिमानसिक चेतना अनिवार्य है, आत्मन तक पहुँचने के लिए नहीं। व्यक्ति को पहले आत्मन की सिद्धि प्राप्त करनी होगी, उसके बाद व्यक्ति अतिमानस को सिद्ध कर सकता है।

CWSA 1: 105 — श्रीअरविन्द

आत्मन की सिद्धि अधिमन या अतिमन के विकास से बहुत पहले आ जाती है। सभी कालों में सैकड़ों साधकों ने उच्चतर मानसिक लोकों में आत्मन की सिद्धि कर ली थी, *बुद्धे : परतः*, परन्तु अतिमानसिक सिद्धि उन्हें नहीं प्राप्त थी। व्यक्ति को आत्मन या भगवान की आंशिक सिद्धि किसी भी स्तर या लोक पर मिल सकती है – मानसिक, प्राणिक, भौतिक स्तर पर भी, और जब व्यक्ति मनुष्य के सामान्य मन के स्तर से ऊपर उच्चतर तथा बृहतर मन में उठ जाता है तब आत्मन अपनी समस्त चेतन व्यापकता में प्रकट होने लगता है।

आत्मन की इस व्यापकता में पूर्ण प्रवेश के द्वारा ही मानसिक गतिविधि के बन्द होने की संभावना होती है। व्यक्ति में आन्तरिक शान्ति आ जाती है। उसके बाद यह आन्तरिक शान्ति तब भी बनी रह सकती है जब किसी प्रकार की गतिविधि होती रहे। सत्ता अन्दर शान्त बनी रहती है, यंत्रों में क्रिया होती रहती है तथा आत्मन की आधारभूत शक्ति व अचंचलता के क्षुब्ध हुए बिना व्यक्ति एक उच्चतर स्रोत से सभी आवश्यक निर्देश प्राप्त करता है तथा मानसिक, प्राणिक या शारीरिक क्रिया का संचालन करता रहता है।

अधिमन तथा अतिमन की अवस्थाएं इससे कुछ ऊपर हैं, किन्तु इसके पूर्व कि व्यक्ति उन्हें समझ पाये, व्यक्ति को पहले आत्मसिद्धि प्राप्त करनी होगी – अध्यात्मीकृत मन तथा हृदय की सम्पूर्ण क्रिया, चैत्य जागृति, बन्दी चेतना की मुक्ति, शुद्धीकरण तथा आधार का सम्पूर्ण उद्घाटन। उन चरम वस्तुओं अधिमन, अतिमन के विषय में अभी मत सोचो बल्कि मुक्त प्रकृति में पहले इन आधारों को स्थापित करो।

CWSA 1:105 – श्रीअरविन्द

मैंने यह कभी नहीं सुना कि दूसरे योगों में नीरवता का अवरोहण होता है – मन नीरवता में चला जाता है। क्योंकि मैं आरोहण और अवरोहण के बारे में लिखता रहा हूँ, मुझे अनेक स्थानों से कहा गया कि इस योग में कुछ भी नवीन नहीं है – अतः मुझे आश्चर्य हो रहा है कि क्या लोग बिना जाने आरोहण अवरोहण का अनुभव तो नहीं कर रहे हैं ! या कम से कम प्रक्रिया की जानकारी के बिना इसे प्राप्त तो नहीं कर रहे हैं ! यह सिर से ऊपर उठने तथा वहाँ ठहरने के समान है – जिसे मैंने तथा अन्य लोगों ने योग में अनुभव किया है। जब मैंने पहली बार इसके बारे में किसी को कहा तब लोगों ने आश्चर्य प्रकट किया और सोचा मैं अनर्गल बातें कर रहा हूँ। पुराने योगों में व्यापकता की अनुभूति अवश्य होती होगी क्योंकि इसके बिना व्यक्ति अपने अन्दर विश्व को अनुभव नहीं कर सकता अथवा शारीरिक चेतना से मुक्त नहीं हो सकता अथवा अनन्त ब्रह्म से संयुक्त नहीं हो सकता। परन्तु सामान्यतः जैसा कि तान्त्रिक योग में है, लोग कहते हैं कि चेतना ब्रह्म रन्ध्र, सिर की चोटी, सर्वोच्च ऊँचाई तक जाती है। राजयोग निस्सन्देह उच्चतम अनुभूति के साधन के रूप में समाधि पर बल देता है। परन्तु स्पष्टतः यदि व्यक्ति ने जाग्रत अवस्था में ब्राह्मी स्थिति नहीं प्राप्त की है तब सिद्धि में पूर्णता नहीं आ सकती। गीता स्पष्ट रूपसे समाहिता बनने (जो समाधि में बने रहने के समान है) तथा जाग्रत अवस्था के समान ब्राह्मी स्थिति की बात करती है जिसमें व्यक्ति रहता तथा समस्त क्रिया कलाप करता है।

***

मैं स्वयं समझता हूँ कि पुराने योगों में अवरोहण की अनुस्थिति उनके मुख्य रूप से मनो-आध्यात्मिक-गुह्य अनुभूति में सीमाबद्ध

रहने के कारण रही होगी जिसमें उच्चतर अनुभूतियाँ शान्त मन में अथवा संकेन्द्रित हृदय में – अनुभूति का यह क्षेत्र ब्रह्मरन्ध्र से नीचे की ओर रहने के कारण – एक तरह से निस्पन्दन अथवा छवि के द्वारा आती हैं। लोग इसके ऊपर केवल समाधि की अवस्था में या बिना किसी गत्यात्मक अवरोहण के स्थैतिक मुक्ति की अवस्था में जाते थे। जो कुछ गत्यात्मक था वह अध्यात्मीकृत मानसिक तथा प्राणिक-भौतिक चेतना के क्षेत्र में घटित होता। इस योग में चेतना को (मनो-आध्यात्मिक-गुह्य अनुभूति की कुछ मात्रा के द्वारा निम्न क्षेत्र की तैयारी हो जाने के बाद) ब्रह्मरन्ध्र से ऊपर की ओर उन परासों तक जो वास्तविक आध्यात्मिक चेतना का क्षेत्र है – ले जाया जाता है तथा वहाँ से केवल ग्रहण करने की बजाय वहाँ निवास करना होता है और वहीं से निम्न चेतना को पूरी तरह रूपान्तरित करना पड़ता है। क्योंकि आध्यात्मिक चेतना की एक गत्यात्मक गुणवत्ता होती है जिसकी प्रकृति है प्रकाश, शक्ति, आनन्द, शान्ति, ज्ञान, अनन्त व्यापकता जिसे अधिकृत कर सम्पूर्ण सत्ता में अवरोहण करना होता है। अन्यथा व्यक्ति मुक्ति तो प्राप्त कर सकता है किन्तु पूर्णता या रूपान्तरण (एक सापेक्ष मनो-आध्यात्मिक परिवर्तन को छोड़ कर) नहीं। परन्तु यदि मैं ऐसा कहता हूँ तब इस दावे की अक्षम्य धृष्टता के विरुद्ध लोग गुर्रायेंगे कि मेरे पास जो ज्ञान है वह प्राचीन ऋषि-मुनियों के पास भी न था और मैं उनसे आगे बढ़ जाने का ढोंग करता हूँ। इस सिलसिले में मैं यह कह सकता हूँ कि तैत्तिरीय उपनिषद में कुछ उन उच्चतर लोकों तथा उनके लक्षण के संकेत मिलते हैं तथा यह संभावना लगती है कि सम्पूर्ण चेतना को एकत्र कर उनमें ऊपर उठा जा सकता है। किन्तु बाद में यह विस्मृत हो गया तथा लोग

कहने लगे कि ऊपर पुरुष अथवा आत्मन के साथ बुद्धि ही उच्चतम है, किन्तु इन उच्चतर लोकों के बारे में कोई स्पष्ट विचार नहीं मिलता। इसलिए समाधि अवस्था में अज्ञात तथा अनिर्वचनीय स्वर्गिक लोकों में आरोहण तो सम्भव हो सकता है किन्तु अवरोहण संभव नहीं है – इसीलिए यहाँ रूपान्तर का कोई साधन, कोई सम्भावना नहीं है । केवल गोलोक, ब्रह्मलोक, शिवलोक या निरपेक्ष में जीवन से पलायन तथा मुक्ति ही सम्भव है।

CWSA 28: 108-09 – श्रीअरविन्द

योग क्यों ?

मनुष्य में केवल एक जीवन का व्यक्तित्व अज्ञान में एक रूपायन है, इसलिए एक पतन है; यह सत्ता का शिखर नहीं हो सकता। हम लोग यह भी स्वीकार नहीं करते कि यह स्वाभाविक सृजन का शिखर होगा किन्तु यह कहते हैं कि कुछ उच्चतर शिखर हैं जहाँ हमें आरोहण करना है और उनकी शक्तियों को पार्थिव प्रकृति में रहस्योद्घाटित करना है। स्वाभाविक सृजन प्रकृति में गुप्त भागवत चेतना का क्रमिक विकास है जो पहले पहल अज्ञान के द्वारा सीमित तथा छद्मावृत रहता है।इसे अभी भी अज्ञान से बाहर आरोहण करना है – इसीलिए मानवीय व्यक्तित्व से परे जाकर भागवत व्यक्तित्व में विकसित करना है। इसी आध्यात्मिक क्रमविकास में भागवत योजना अपनी केन्द्रीय तथा महत्वपूर्ण रूपरेखा अभिव्यक्त करती है तथा समस्त सृष्टि को सर्वोच्च कृपा के लिए आमंत्रित करती है।

CWSA 28:132 – श्रीअरविन्द

मनुष्य की महानता उसके वर्तमान स्वरूप में नहीं है बल्कि उसमें है जो वह भविष्य में सम्भव बना सकता है। उसकी महिमा यह है कि वह एक जीवन्त परिश्रम का बन्द तथा गुप्त कारखाना है जिसमें एक दिव्य शिल्पी के द्वारा अतिमानवता को तैयार किया जा रहा है। परन्तु उसे इससे अधिक महानता के लिए भी स्वीकृत किया गया है और वह यह है कि निम्न सृष्टि के अपवाद स्वरूप वह आंशिक रूप से इस दिव्य रूपान्तर का शिल्पी है। उसकी इस बात की सचेतन स्वीकृति, उसका निवेदित संकल्प तथा उसकी भागीदारी की आवश्यकता है कि उसके शरीर में वह महिमा उतरे जो उसे प्रतिस्थापित करेगी। उसकी अभीप्सा अतिमानसिक सृष्टि कर्ता के प्रति पृथ्वी की पुकार है।

यदि धरती पुकार करे तथा परमा शक्ति उत्तर दे तब उस विशाल तथा महिमामय रूपान्तर के लिए मुहूर्त इसी क्षण हो सकता है।

CWSA 12: 160 — श्रीअरविन्द

हमें अपनी नियति की सीमा पहले से ही ज्ञात है। हमें, अभी जैसे हैं — उससे अधिक ज्योतिर्मय सत्ता में संवर्धित होना है, सुख-दुःख से शुद्धतर, बृहत्तर तथा गहनतर आनन्द में, अपने संघर्षरत ज्ञान और अज्ञान से चेतना के सहज तथा असीम प्रकाश में, लड़खड़ाती सबलता तथा दुर्बलता से एक सुनिश्चित तथा सर्व बुद्धिमान शक्ति में, विभाजन तथा अहंभाव से विश्व व्यापकता तथा एकता में विकसित होना है। क्रमविकास की एक प्रक्रिया है जिसे हमें पूरा करना है : एक मानव पशुत्व अथवा पाशविक मानवता पर्याप्त नहीं है। हमें मानवता की अपर्याप्त आकृति से देवत्व की आकृति में, मन से अतिमन में, सीमित चेतना से असीम की चेतना में, अपरा प्रकृति

से परा प्रकृति में जाना होगा।

***

हमें अपने मानवीय आकार का अतिक्रमण करना तथा दिव्य बनना है। परन्तु यदि हमें यह करना है तब हमें सर्वप्रथम भगवान को पाना होगा, क्योंकि मानवीय अहंभाव हमारी सत्ता की निम्न तथा अपूर्ण स्थिति है, भगवान उच्चतर तथा पूर्ण स्थिति हैं। वे हमारी पराप्रकृति के अधिकारी हैं तथा उनकी अनुमति के बिना कुछ भी प्रभावशाली उत्थान नहीं हो सकता। सीमित असीम नहीं बन सकता जब तक यह अपनी गुप्त असीमता को देख नहीं लेता तथा उसके द्वारा अथवा उसकी ओर आकर्षित नहीं होता और न प्रतीकात्मक सत्ता अपनी शक्ति से अपनी प्रत्यक्ष प्रकृति की सीमाओं को जीत सकती है जब तक वह अपने अन्दर की वास्तविक सत्ता को देख नहीं लेती, उससे प्रेम नहीं करती तथा उसकी खोज नहीं करती। यह एक विशेष प्रकार का सम्भवन है तथा प्रतीकात्मक सत्ता की प्रकृति में यह सम्भवन जड़ा होता है या निर्दिष्ट होता है कि इसे होना है। केवल उसका स्पर्श, जो सर्व सम्भवन है तथा सर्व सम्भवन का अतिक्रमण भी करता है इसे इसकी अपनी सीमित प्रकृति के बन्धन से मुक्त कर सकता है। भगवान ही वह तत् हैं जो सर्व हैं तथा जो सर्व का अतिक्रमण करते हैं। इसलिए केवल भगवान का ज्ञान, प्रेम तथा उन पर अधिकार ही हम सब को मुक्त कर सकता है। जो स्वयं लोकोत्तर हैं केवल वे ही हमें अपने आप से परे जाने में सक्षम बना सकते हैं। जो विश्वव्यापी हैं केवल वे ही हमें हमारे सीमित विशेष अस्तित्व से अधिक विशाल बना सकते हैं।

CWSA 12: 228,115 — श्रीअरविन्द

यदि लक्ष्य है मनुष्य से कुछ श्रेष्ठतर बनना, हमलोगों में से ही एक अतिमानव का विकास होना – जैसा कि बन्दर से मनुष्य विकसित किया गया है – यदि क्रमिक विकास की उक्ति सचमुच सत्य है – निम्न कोटि के पाशविक रूपों से बन्दर, वे पुनः घोंघा, जीवद्रव्य, जेली फिश या वानस्पतिक पशु से तथा इसी तरह क्रम के अन्त तक; तब भला किसी चीज की क्या जरूरत है सिवा प्रशिक्षण की, अधिमानतः हमारी मानसिक, नैतिक तथा भौतिक ऊर्जाओं की सबसे अधिक बौद्धिक तथा वैज्ञानिक ट्रेनिंग की तब तक, जब तक वे प्रकृति के चैत्य रसायन शास्त्र द्वारा आगामी श्रेष्ठतर रूप में रूपान्तरित न हो जायें।

CWSA 12: 116 – श्रीअरविन्द

मनुष्य एक अन्तरवर्ती सत्ता है, वह अन्तिम नहीं है। वह उसके लिए अत्यन्त अपूर्ण है, ज्ञान के लिए क्षमता में अत्यन्त अपूर्ण, आनन्द तथा सौन्दर्य की ओर अपनी उन्मुखता में अत्यन्त अपूर्ण, स्वाधीनता के लिए अपने संकल्प तथा सुव्यवस्था के लिए अपनी सहज वृत्ति में अत्यन्त अपूर्ण। यदि वह अपने प्ररूप में अपने को पूर्ण बनाता भी है तब भी उसका प्ररूप ही इतना निम्न तथा लघु है कि वह विश्व की आवश्यकता को पूरा नहीं कर सकता। कुछ बृहत्तर, उच्चतर, एक सम्पन्न सर्व समाविष्टकारी विश्वव्यापकता में अधिक समर्थ की आवश्यकता है, एक महत्तर सत्ता, एक महत्तर चेतना की, जो अपने आप में वह सब समाकलित कर ले जैसा कि विश्व बनने के लिए निर्दिष्ट है। जैसा कि एक अर्ध-अन्ध द्रष्टा द्वारा कहा गयाहै, उसे अपने आप का अतिक्रमण करना है। मनुष्य को अपने आप से परे, दिव्य अतिमानव में विकसित होना होगा। वह

अतिक्रमण करने के लिए ही पैदा हुआ था। मानवता पर्याप्त नहीं है, यह केवल एक सुदृढ़ सोपान मात्र है। विश्व को आवश्यकता है एक अतिमानवीय पूर्णता की। चेतना का लक्ष्य दिव्यता है। मनुष्य की अन्तरतम आवश्यकता है अपनी मानवता को पूर्ण बनाने की नहीं बल्कि अपने आप से महत्तर बन जाने की, मनुष्य से कुछ अधिक बन जाने की, दिव्य बनने की, यहाँ तक कि भगवान बन जाने की।

मानवता में विश्राम करना अपूर्णता में विश्राम करना है। पूर्ण मनुष्य अपूर्णता का आत्म-सन्तुष्ट अन्तिम रूप होगा। उसकी प्रकृति मध्यवर्ती है इसीलिए इसमें कुछ अधिक के लिए प्रयास एक अन्तर्जात प्रवृति है।

CWSA 12: 230 — श्रीअरविन्द

अभिव्यक्ति से भागने की ललक तुझे क्यों होनी चाहिये मानों संसार अशुभ या अनिष्ट हो? क्या तत् तुझमें और संसार में अभिव्यक्त नहीं है और तू क्या परम से अधिक बुद्धिमान, अधिक शुद्ध और बेहतर है, हे मर्त्य में मन-प्रवंचित आत्मा ? जब तत् तुझसे अलग हो जायेगा तब तेरा यहाँ से जाना अपरिहार्य है और जब तक इसकी शक्ति तेरे ऊपर है तब तक तेरा जाना असम्भव है। यहाँ से जाने के लिए इतनी उग्रता के साथ कभी विलाप न कर। अतः भगवान के आनन्द, शुद्धता, मुक्ति तथा महानता की खोज कर चाहे तू किसी भी स्थिति, अनुभूति या वातावरण में क्यों न रहता हो।

CWSA 12: 93 — श्रीअरविन्द

नारायण अपने को सदा विकसनशील मानवता में अभिव्यक्त करते हैं जो अपनी निर्दिष्ट भागवत आत्मसिद्धि की ओर विस्तारों

तथा संकुचनों की एक शृंखला द्वारा अनुभव में संवर्धित होती है।

प्रत्येक कलियुग में मनुष्य तात्विक आध्यात्मिकता में कुछ न कुछ उपलब्ध करता है। बहुतों के अनुसार मुख्यतः मानव बुद्धि के विकास में प्रगति हुई है और बौद्धिक विकास निस्सन्देह आत्म विजय के लिए अनिवार्य है। बौद्धिक विकास आन्तरिक गहनतर सत्ता की खोज के लिए मनुष्य को सक्षम बनाता है और आंशिक रूप से शरीरेतर विचारों द्वारा उसे प्रतिस्थापित करता है जिसे हमारा दर्शन देहात्मक बुद्धि कहता है। देहात्मक बुद्धि उन विचारों तथा संवेदनों का समाकलन है जो हमें कहता है कि शरीर ही हमारी आत्मा है। शरीरेतर विचार अपने ही आनन्द के लिए बने रहते हैं और जीवन के मुख्य उद्देश्य के रूप में बौद्धिक तथा नैतिक सन्तुष्टि को प्रतिस्थापित करते हैं, तथा निम्न इन्द्रियजन्य कामनाओं को पूर्ण नीरव न भी बना सकें फिर भी उनकी चीख-चिल्लाहटों को नियंत्रित रखते हैं।

वह पाशविक अज्ञान जो शरीर की चिन्ताओं तथा सुखों में तथा प्राणिक आवेगों, भावनाओं तथा संवेदनों में तल्लीन रहता है वह तामसिक होता है, प्रकृति के तृतीय सिद्धान्त की प्रबलता का परिणाम, जो अज्ञान तथा अकर्मण्यता की ओर ले जाता है। यह मानवता के पाशविक तथा निम्न रूपों की स्थिति है जिन्हें पुराणों में प्रथम या तामसिक सृष्टि कहा गया है। बौद्धिक विकास इस पाशविक अज्ञान को दूर भगाता है, इसलिए यह मानवता के विकास में बहुत महत्वपूर्ण स्थान रखता है।

परन्तु केवल बुद्धि के द्वारा ही मनुष्य ऊपर नहीं उठता। यदि निर्मल बुद्धि को शुद्ध भावनाओं का समर्थन नहीं मिलता तब बुद्धि में एक बार पुनः शरीर द्वारा अधिकृत किये जाने और उसकी सेवा

में रहने की प्रवृति आ जाती है तथा सम्पूर्ण मनुष्य के ऊपर शरीर का प्रभुत्व स्वाभाविक स्थिति से अधिक खतरनाक हो जाता है क्योंकि स्वाभाविक स्थिति की निष्कपटता लुप्त हो चुकी होती है। ज्ञान की शक्ति इन्द्रियों के अधिकार में आ जाती है, सत्व तमस की सेवा करने लगता है, हमारे आन्तरिक भगवान निर्दयी के गुलाम बन जाते हैं।

इसलिए भावनाओं का विकास स्वस्थ मानव-क्रमविकास की पहली शर्त है। जब तक शरीर से भावनाएं निस्सृत नहीं होतीं तथा दूसरों के लिए प्रेम क्रूर स्वार्थपूर्ण प्रेम का उत्तरोत्तर स्थान ग्रहण नहीं कर लेता तब तक कोई उर्ध्वगामी प्रगति नहीं हो सकती। मानव समाज के संगठन में मनुष्य के अन्दर परार्थवादी तत्व के विकास की प्रवृति होती है जो जीवन पर आक्रमण करती है और उसके साथ संघर्ष करती है और अनायास मृत्यु को जीत लेती है। इसलिए जीवन के लिए संघर्ष नहीं अथवा कम से कम अपने जीवन के लिए संघर्ष नहीं, बल्कि दूसरों के जीवन के लिए संघर्ष, अपने बच्चों के लिए, अपने परिवार के लिए, अपने वर्ग, समुदाय, अपनी जाति व राष्ट्र, मानवता के लिए संघर्ष जो क्रमविकास में सर्वाधिक महत्वपूर्ण सिद्धान्त या शर्त है। एक सदा विस्तारणशील सत्ता उस पुरानी संकीर्ण सत्ता का स्थान ग्रहण कर लेती है जो हमारे व्यष्टिगत मन तथा शरीर में सीमित थी, और यही है नैतिक संवर्धन जिसे समाज मदद करता तथा संगठित करता है।

हमलोगों का धर्म घोषणा करता है कि क्रमविकास उस गहनतर भावनात्मक तथा बौद्धिक सत्ता के द्वारा जड़-द्रव्य पर एक विजय है जो शरीर में अन्तर्वलित थी और प्राण की कामनाओं के द्वारा अति मेघाच्छन्न थी। धर्म इसके और आगे हमारे क्रमविकास के लिए

प्रेक्षक तथा परावर्ती बुद्धि की शोधित भावनाओं या स्पष्ट गतिविधि से एक उच्चतर विधान की खोज करता है। क्रमविकास का उच्चतम विधान है आत्मन जिसमें ज्ञान, प्रेम तथा कर्म, मानवता के त्रिविध धर्म को अपनी पूर्णता तथा परिणति प्राप्त हो जाती है। यह है आनन्द कोष में स्थित आत्मन और इस व्यष्टिगत सत्ता के वैश्व सत्ता के साथ, जो भगवान है, समागम तथा तादात्म्य के द्वारा ही मनुष्य पूर्णतः शुद्ध, पूर्णतः शक्तिमान, पूर्णतः बुद्धिमान तथा पूर्णतः आनन्दमय हो जायेगा और क्रमविकास की परिपूर्ति हो जायेगी। भावनाओं के शुद्धीकरण तथा बुद्धि की स्पष्टता के द्वारा शरीर तथा प्राणिक सत्ता पर विजय प्राप्त करना अतीत का प्रधान कार्य था। शुद्धीकरण किया गया है नैतिकता तथा धर्म के द्वारा, स्पष्टता का कार्य किया गया है विज्ञान के द्वारा और दर्शनशास्त्र, कला, साहित्य तथा सामाजिक व राजनीतिक जीवन प्रधान माध्यम थे जिनमें इन उत्थानक शक्तियों ने कार्य किया है। आत्मा के द्वारा भावनाओं तथा बुद्धि पर विजय भविष्य का कार्य है। योग वह साधन है जिसके द्वारा विजय सम्भव होती है।

योग में मानवता की समस्त विगत प्रगति, ऐसी प्रगति जिसे यह एक अत्यन्त अनिश्चित पट्टे पर बनाये रखती है, शीघ्रता से समाकलित हो जाती है, पुष्ट हो जाती है तथा एक अहस्तान्तरणीय सम्पत्ति बन जाती है। शरीर पर पूर्ण अधिकार हो जाता है, सामान्य सभ्य मनुष्य के द्वारा जैसा होता है वैसा अपूर्ण नहीं बल्कि पूर्ण अधिकार। प्राणिक भाग शुद्ध हो जाता है तथा बाहरी संसार के साथ सम्बन्धों में उच्चतर भावनात्मक तथा बौद्धिक सत्ता का यन्त्र बना लिया जाता है। बहिर्गामी विचारों को अन्तर्गामी विचारों के द्वारा प्रतिस्थापित कर दिया जाता है। निम्न विशेषताओं को प्रणाली से बाहर कर उनके

स्थान पर उच्चतर विशेषताएं स्थापित कर दी जाती हैं। निम्न भावनाओं को उत्कृष्ट भावनाएं बाहर निकाल देती हैं। अन्त में सभी विचार तथा भावनाएं शान्त हो जाती हैं तथा अन्तर्ज्ञानात्मक बुद्धि के पूर्ण जागरण के द्वारा, जो मन को आत्मन के सम्पर्क में ले आता है, सम्पूर्ण मनुष्य को अन्ततः अनन्त की सेवा में रख दिया जाता है। समस्त मिथ्यात्मक सत्ता सत्य की सत्ता में विलीन हो जाती है। मनुष्य भगवान के साथ सादृश्य, एकता अथवा तादात्म्य प्राप्त कर लेता है। यह मुक्ति है, वह अवस्था जिसमें मानवता पूर्ण रूप से स्वाधीनता तथा अमरत्व प्राप्त कर लेता है जो इसके शाश्वत लक्ष्य हैं।

CWSA 12:18 — श्रीअरविन्द

हमसे क्या अपेक्षा की जाती है ?

जो वरदान हमने परम प्रभु से मांगा है वह, धरती जो कुछ उनसे मांग सकती है, उनमें सर्वोच्च है। वह एक ऐसा रूपान्तर है जिसे सिद्ध करना सबसे अधिक कठिन है और जो अपनी शर्तों में अत्यन्त बाध्यकारी है। यह है जड़द्रव्य में परम सत्य और शक्ति का अवतरण, भौतिक लोक तथा चेतना और भौतिक जगत में अतिमानसिक की प्रतिष्ठा तथा जड़ द्रव्य के मूल तत्व तक का समग्र रूपान्तरण। केवल परम कृपा ही इस चमत्कार को सम्पन्न कर सकती है।

परम शक्ति ने सर्वाधिक भौतिक चेतना में अवरोहण किया है किन्तु यह भौतिक आवरण के घनत्व के पीछे रुक गई है और अभिव्यक्त होने के पहले, इसके पहले कि वह पूर्ण रूप से मुक्त होकर अपना कार्य आरम्भ करे, यह मांग करती है कि परम कृपा की शर्तें सच्ची और प्रभावकारी हों।

एक सम्पूर्ण समर्पण, भागवत प्रभाव की ओर एक एकनिष्ठ

आत्मोद्घाटन, सत्य का एक सतत तथा समग्र चुनाव तथा मिथ्यात्व का इनकार, ये एक मात्र शर्तें हैं। किन्तु इन्हें सर्वाधिक भौतिक चेतना और इसके कार्यान्वयन तक पूर्ण रूप से, बिना प्रतिबन्ध के, बिना किसी टालमटोल या बहाना के, सरलतापूर्वक और सच्चाई के साथ पूरी करनी होगी।

CWSA 12: 372 — श्रीअरविन्द

आवश्यकता है एक ऐसे श्रेष्ठ मानस की जिसमें भ्रांति की झलकें न हों,

एक शिव संकल्प की जो चैत्य सत्ता के देवत्व को अभिव्यक्त करे,

एक श्रेष्ठ शौर्य की जो निज वेग के कारण ठोकर न खाये,

एक हर्ष की जो अपनी छाया में शोक को घसीटता न लाये।

सावित्री पृ.५१

निर्णय अन्दर से आना चाहिये

योग करना, रूपान्तर का यह योग करना सर्वाधिक दुर्गम है। यह तभी सम्भव है यदि व्यक्ति यह महसूस करे कि वह यहाँ (मेरा तात्पर्य यहाँ धरती पर) इसी के लिए आया है किसी और कार्य के लिए नहीं तथा उसके अस्तित्व का और कोई कारण नहीं है।यदि उसे कठिन परिश्रम करना पड़े, कष्ट झेलना पड़े, संघर्ष करना पड़े, यह सब महत्वहीन है। "मैं यही चाहती हूँ, और कुछ नहीं।" तब यह भिन्न है। अन्यथा मैं कहूँगी, "प्रसन्न रहो और अच्छा बनो इस अर्थ में कि यह समझो और जानो कि जिन स्थितियों में तुम रहते हो वे विशिष्ट हैं और सामान्य से अधिक एक उच्चतर, अधिक सत्यतर जीवन जीने का प्रयास करो जिससे इस चेतना का अल्पांश, यह ज्योति तथा

इसकी उत्तमता विश्व में अपने आप को अभिव्यक्त कर सके।यह बहुत अच्छा होगा।"

परन्तु यदि एक बार योग के पथ पर कदम रख दिया है तब तुम्हें इस्पात का संकल्प रखना होगा तथा सीधा लक्ष्य की ओर बढ़ना होगा, चाहे जो भी मूल्य चुकाना पड़े।

CWM 7: 199 — श्रीमाँ

यह योग भागवत सत्य की खोज तथा उसके मूर्त रूप की अभीप्सा के प्रति सम्पूर्ण समर्पण की मांग करता है और किसी चीज के प्रति नहीं। अपने जीवन को भगवान तथा कुछ ऐसी बाह्य गतिविधि तथा लक्ष्य जिसका सत्य की खोज से कुछ लेना-देना नहीं है — के बीच विभाजित करना अस्वीकार्य है। उस तरह की कोई छोटी से छोटी चीज भी योग में सफलता को असम्भव बना देगी।

तुम्हें अपने अन्दर जाना होगा तथा आध्यात्मिक जीवन के प्रति पूर्ण समर्पण में प्रवेश करना होगा। यदि तुम योग में सफल होना चाहते हो तब मानसिक प्राथमिकताओं के प्रति समस्त संलग्नता को छोड़ना होगा, प्राणिक लक्ष्यों तथा रुचियों और आसक्तियों का त्याग करना होगा, परिवार, मित्र, देश के प्रति समस्त अहंकारात्मक लगाव से मुक्त होना होगा। बहिर्गामी ऊर्जा या क्रिया के रूप में जो भी आनेवाला है उसे उस सत्य से आना होगा जिसकी एक बार खोज की जा चुकी है न कि निम्न मानसिक अथवा प्राणिक प्रयोजनों से, भागवत संकल्प से न कि अहंकार की व्यक्तिगत पसन्द या प्राथमिकताओं से।

CWSA 29: 519 — श्रीअरविन्द

योग विचारों की चीज नहीं है बल्कि आन्तरिक आध्यात्मिक अनुभूति की चीज है। धार्मिक अथवा आध्यात्मिक विचारों के प्रति आकर्षण मात्र से किसी प्रकार की सिद्धि नहीं आती। योग का अर्थ है चेतना का परिवर्तन। मात्र मानसिक गतिविधि चेतना में परिवर्तन नहीं ला सकती। यह केवल मन का परिवर्तन ला सकती है। और यदि तुम्हारा मन पर्याप्त चंचल है तब यह अन्त तक किसी सुनिश्चित मार्ग अथवा कोई आध्यात्मिक आश्रय तक पहुँचे बिना एक चीज से दूसरी चीज तक परिवर्तित होता रहेगा। मन सोच सकता है, सन्देह कर सकता है, प्रश्न कर सकता है, स्वीकार कर सकता है तथा अपनी स्वीकृति वापस ले सकता है, रूपायन कर सकता है और उसे मिटा सकता है, निर्णय कर सकता है और उसे रद्द कर सकता है, हमेशा सतह पर सतही संकेतों के द्वारा निर्णय लेता है इसलिए कभी सत्य की किसी गहन तथा सुदृढ़ अनुभूति पर नहीं पहुँचता और वह केवल अपने बल पर इससे अधिक कुछ नहीं कर सकता। केवल तीन मार्ग हैं जिनसे यह अपने आप को सत्य का एक माध्यम या यन्त्र बना सकता है। या तो इसे आत्मन में नीरव बन कर एक अधिक विस्तृत तथा महत्तर चेतना के लिए स्थान देना होगा अथवा इसे अपने आपको आन्तरिक ज्योति के प्रति निष्क्रिय बन कर उस ज्योति की अभिव्यक्ति का साधन बनना होगा अथवा इसे प्रश्नात्मक बौद्धिक सतही मन से अन्तर्ज्ञानात्मक बुद्धि, एक ऐसी अन्तर्दृष्टि वाले मन में बदलना होगा जो भागवत सत्य के प्रत्यक्ष बोध के लिए योग्य हो।

यदि तुम योग के मार्ग में कुछ करना चाहते हो तब तुम्हें हमेशा के लिए यह निश्चय करना होगा कि किस विधि का अनुगमन करना है। भविष्य की ओर उन्मुख होने का कोई लाभ नहीं यदि तुम हमेशा

अतीत की ओर पीछे मुड़ कर देखते रहो। इस प्रकार तुम कहीं नहीं पहुँचोगे। यदि तुम अपने अतीत से बंधे हुए हो तब वापस चले जाओ और जो मार्ग तुमने चुना है उसका अनुगमन करो। परन्तु यदि यह पथ तुम चुनते हो तब तुम्हें एकनिष्ठ मन से अपने आप को इसे समर्पित कर देना होगा और प्रत्येक क्षण पीछे मुड़ कर नहीं देखना होगा।

CWSA 12: 161 — श्रीअरविन्द

***

हृदय में परम प्रभु की उत्साहपूर्ण आराधना, संकल्प में इसके प्रति एक सुदृढ़ उर्ध्वगामी अभीप्सा अथवा स्वभाव में इसके लिए एक प्रबल पिपासा के बिना अपनी वर्तमान स्थिति से भिन्न बनने का हमलोगों में आवेग नहीं आ सकता अथवा वह शक्ति नहीं आ सकती जिससे हम अपने अन्तर्निहित तथा अधिकारात्मक मानव प्रकृति के अतिक्रमण जैसे कठिन कार्य को कर सकें। पैगम्बरों ने हमेशा इसी एक उद्देश्य के बारे में कहा है और अवतारों ने इसी के लिए अवतरण लिया है। उन्होंने भगवान तक जाने का हमारा आवाहन किया, प्रेरित किया कि हम अपनी उर्ध्वगामी ऊर्जाओं को पुकारें अथवा विश्व में कुछ ऐसी चीज तैयार करें जो मानवता को इसकी कठिन आरोही यात्रा के लक्ष्य के निकटतर लाने में मदद करे।

CWSA 12: 115 — श्रीअरविन्द

यदि तू योग के दुरारोह तथा कठिन मार्ग का अनुगमन करना चाहता है तब दो चीजों की आवश्यकता है : तेरे अन्दर इसकी आवश्यकता तथा संकल्प और आत्मा की पुकार।

आवश्यकता आत्मा की आवश्यकता होनी चाहिये, जाग्रत या

जागती हुई अथवा सतह पर आने के लिए प्रयत्नशील। क्योंकि अन्य सब क्षणिक हो सकती है अथवा मिथ्या हो सकती है परन्तु आत्मा की आवश्यकता स्थायी तथा सच्ची होती है।

केवल तेरी आत्मा की भागवत ज्योति तथा भागवत पूर्णता के लिए आवश्यकता तुम्हें अनेक रातों के अन्धकार के उस पार ले जा सकती है अपरिमेय शिखरों पर पहुँचने से पहले पथ की खुली या छिपी खाइयों, खड़ी चढ़ाई तथा दलदल के खतरों के आगे, दानवी शक्तियों के साथ युद्ध करते हुए, भटकाने वाले हाथों के चंगुल से बचा कर, रात्रि व सन्ध्या की भ्रान्तियों, मिथ्या प्रकाश तथा भ्रामक दीप्तियों से सुरक्षित रह कर, आघातों, अग्निपरीक्षाओं, जालों तथा देवों के प्रलोभनों से रक्षा करते हुए जिनसे तुम्हें निश्चय ही गुजरना पड़ेगा।

CWSA 12: 372 — श्रीअरविन्द

व्यक्ति को परोपकारवाद, देशभक्ति के आदर्शों को, यहाँ तक कि व्यक्तिगत मुक्ति की अभीप्सा को भी छोड़ने के लिए तैयार रहना होगा और केवल भगवान के लिए योग का अनुगमन करना होगा। अभीप्सा को अटल होना होगा किन्तु इसे केवल बौद्धिक अभीप्सा नहीं बल्कि अन्तरतम आत्मा की अभीप्सा होना होगा। तब इसका अर्थ है कि यह ऊपर से पुकार है। व्यक्ति को योग आरम्भ करने से पहले अटल निर्णय लेना है। ऐसा निर्णय लेने में कुछ समय लग सकता है किन्तु तब तक प्रतीक्षा करना बेहतर होगा।

Evening talks with Sri Aurobindo, p.29 — श्रीअरविन्द

इस योग की साधना एक मात्र केन्द्रीय मुक्तिदायिनी प्रज्ञा की सतत आन्तरिक स्मृति की मांग करती है... समस्त में एक आत्मन है, एक भगवान ही समस्त है; सभी भगवान में हैं, सभी भगवान हैं और विश्व में कुछ भी अन्य नहीं है, – यह विचार अथवा यह विश्वास सम्पूर्ण पृष्ठभूमि होनी चाहिये जब तक यह कर्मी की चेतना का सम्पूर्ण तत्व न बन जाये। इस प्रकार की स्मृति, इस प्रकार का एक आत्म-गत्यात्मक ध्यान इसके अन्त में उस तत की गहन तथा सतत अन्तर्दृष्टि तथा एक जीवन्त और सर्व समाविष्टकारी चेतना में बदल जाता है जिसे हम इतने प्रभावशाली रूप से याद करते हैं अथवा जिस पर हम सब इतने निरन्तर ध्यान करते हैं।

CWSA 23: 112 – श्रीअरविन्द

प्रश्न : मधुर माँ, 'आत्म गत्यात्मक ध्यान' से श्रीअरविन्द का क्या तात्पर्य है ?

यह एक ऐसा ध्यान है जिसमें तुम्हारी सत्ता को रूपान्तरित करने की शक्ति है। गतिहीन ध्यान के विपरीत यह गतिशील ध्यान है। गतिहीन ध्यान निश्चल तथा अपेक्षाकृत निष्क्रिय होता है और तुम्हारी चेतना में या रहन-सहन के ढंग में कुछ भी परिवर्तन नहीं करता। गत्यात्मक ध्यान रूपान्तरण का ध्यान है।

सामान्यतः लोग गत्यात्मक ध्यान नहीं करते। जब वे ध्यान में प्रवेश करते हैं – अथवा कम से कम जिसे वे ध्यान कहते हैं – वे एक प्रकार की निश्चलता में प्रवेश करते हैं जहाँ कुछ भी संचलन नहीं होता और इससे बाहर वैसे ही आते हैं जैसे वे ध्यान में गये थे,

अपनी सत्ता में या चेतना में बिना किसी परिवर्तन के। और जितने वे निश्चल होते हैं उतने ही अधिक वे प्रसन्न होते हैं। इस प्रकार वे शाश्वत काल तक ध्यान करते रह सकते हैं फिर भी इससे न विश्व में और न उनके अन्दर कोई परिवर्तन आयेगा। इसीलिए श्रीअरविन्द गत्यात्मक ध्यान के बारे में कहते हैं जो ठीक उसके विपरीत है। यह एक रूपान्तरकारी ध्यान है।

प्रश्न : यह कैसे किया जाता है ? क्या यह एक भिन्न प्रकार से किया जाता है ?

मैं समझती हूँ कि अभीप्सा को भिन्न होना चाहिये, मनोवृति को भिन्न होना चाहिये। 'भिन्न प्रकार' – 'प्रकार' से तुम्हारा तात्पर्य क्या है ? (हँसते हुए) बैठने का ढंग ? वह नहीं। आन्तरिक ढंग!

हाँ।

किन्तु प्रत्येक के लिए यह भिन्न होता है।

मैं समझती हूँ कि यह जानना सबसे अधिक महत्वपूर्ण है कि व्यक्ति क्यों ध्यान करता है। यही ध्यान को गुणवत्ता प्रदान करता है और इसे एक या दूसरे प्रकार का बनाता है।

तुम अपने को भागवत शक्ति के प्रति उद्घाटित करने के लिए ध्यान कर सकते हो। तुम साधारण चेतना को अस्वीकार करने के लिए ध्यान कर सकते हो। तुम अपनी सत्ता की गहराइयों में प्रवेश करने के लिए ध्यान कर सकते हो। तुम यह सीखने के लिए ध्यान कर सकते हो कि समग्र रूप से आत्मदान कैसे किया जाता है। तुम सब तरह की चीजों के लिए ध्यान कर सकते हो। तुम शान्ति,

अचंचलता तथा नीरवता में प्रवेश करने के लिए ध्यान कर सकते हो – सामान्यतः लोग यही करते हैं परन्तु कुछ अधिक सफलता नहीं मिलती। परन्तु तुम रूपान्तर की शक्ति ग्रहण करने के लिए भी ध्यान कर सकते हो, उन बिन्दुओं की खोज करने के लिए जिन्हें रूपान्तरित करना है तथा प्रगति की रेखा का पता लगाने के लिए ध्यान कर सकते हो। और तब तुम अत्यन्त व्यावहारिक कारणों के लिए भी ध्यान कर सकते हो। जब तुम्हें कोई कठिनाई दूर करनी है, कोई समाधान पाना है, जब तुम्हें किसी कार्य में मदद की आवश्यकता है तब उसके लिए भी ध्यान कर सकते हो।

मैं समझती हूँ कि प्रत्येक का ध्यान का अपना एक तरीका होता है। परन्तु यदि व्यक्ति चाहता है कि ध्यान गत्यात्मक हो तब उसमें प्रगति की दृढ़ अभीप्सा होनी चाहिये और प्रगति की इसी अभीप्सा में मदद करने तथा इसकी पूर्ति के लिए ध्यान करना चाहिये। तब यह गत्यात्मक ध्यान बन जाता है।

CWM 8:88 – श्रीमाँ

***

प्रत्यक्ष रूप से भ्रमित तथा अव्यवस्थित जगत के पीछे जिसे हम सब जानते हैं, सच्चा जगत तैयार है। यह तैयार है तथा अभिव्यक्ति के समय की प्रतीक्षा कर रहा है जब जड़-पदार्थ एक ऐसी अवस्था में होगा जो इस उच्चतर सत्य को व्यक्त कर सके।

इस योग में यदि हर चीज तुम स्वयं करते हो तब घालमेल कर दोगे और फिर प्रत्येक क्षण तुम्हें उच्चतर गति को स्वीकृति देनी होगी, निम्न गतिविधि को इनकार करना होगा और फिर भी तुम्हें कर्म करते रहना होगा। यदि तुम उचित ढंग से कर्म न करो तब भी तुम घालमेल कर दोगे।

यदि तुम उच्चतर शक्ति को नीचे अवतरित होते हुए देखो तब तुम्हें उसे उचित ढंग से ग्रहण करना होगा। जब उच्चतर शक्ति मौजूद हो तब तुम्हें उसे उचित ढंग से बिना उसे विकृत किये प्रयुक्त करना होगा। जब उच्चतर शक्ति अनुपस्थित हो तब तुम्हें स्वयं कार्य करना होगा और परिणाम भुगतना होगा। तुम यह नहीं कह सकते कि भगवान को ही हर चीज करनी होगी। भगवान इस तरह हर चीज नहीं करते।

Evening talks with Sri Aurobindo, p.328 — श्रीअरविन्द

इस योग में किसी भी तरह से तुम यह नहीं कह सकते कि "गुरु हर चीज करेगा" और सारा भार उस पर छोड़ दो। मैं अन्य योगों के बारे में नहीं जानता परन्तु इस योग का अर्थ है इस बात के प्रति हर क्षण सचेतन रहना कि अपने अन्दर क्या हो रहा है। व्यक्ति को उच्चतर कार्यप्रणाली को स्वीकृति देनी है तथा निम्नतर गतिविधि को अस्वीकार करना है। यही है आधार।

Evening talks with Sri Aurobindo, p.329 — श्रीअरविन्द

तुम्हें अभीप्सा को परम प्रभु की ओर निर्देशित कर देना चाहिये। जब तुम ऐसा करने में सफल हो गये हो तब तुम्हें अपनी सभी आन्तरिक गतिविधियों की निगरानी करनी चाहिये और यह देखना चाहिये कि वे क्या हैं। जो कुछ वहाँ तुम देखो उसकी परवाह किये बिना तुम्हें अचंचल बने रहना होगा। इस अचंचलता को तुम्हें इतना गहन बनाते जाना होगा कि तुम चेतना में स्थिर, विस्तृत और विशाल महसूस कर सको। यदि तुम ऐसी अचंचलता स्थापित कर सको तब तुम इस योग को कर सकते हो।

अचंचलता को इतनी गहरी और सुदृढ़ हो जाना चाहिये कि सामान्य कार्य करते हुए इसे अपने अन्दर महसूस कर सको और गतिविधि को अपने से कुछ पृथक् चीज के रूप में देख सको।

ध्यान के लिए तुम्हें एक सुनिश्चित समय निर्धारित करना होगा तथा इसे नियमित रूप से करते रहना होगा। तुम अपने अनुभव के विषय में समय-समय पर लिख सकते हो।

***

इस योग की स्वीकृति का अर्थ है अपने जीवन में एक बड़ा तथा निर्णायक कदम उठाना तथा तुम इसे करने में समर्थ बन सको इसके लिए उच्चतर शक्ति को कार्य करने की सहमति देनी होगी। मानसिक तथा प्राणिक सत्ता में ऐसा कुछ नहीं होना चाहिये जो उच्चतर कार्यप्रणाली के मार्ग में बाधा डाले।

Evening talks with Sri Aurobindo, pp.59, 37 — श्रीअरविन्द

भयंकर शक्तियाँ तुम पर आक्रमण करेंगी तथा तुम्हें निरन्तर उचित चुनाव करते रहना होगा तथा उच्चतर सत्ता की कार्यप्रणाली को सहमति देते रहना होगा और इस प्रकार अपनी सामर्थ्य को

प्रमाणित करना होगा। यदि तुम इस योग को करना आरम्भ करते हो तब प्रथम परिणाम सम्भवतः होगा उत्तेजनापूर्ण आन्तरिक अव्यवस्था, अशान्ति न कि शान्ति जिसकी तुम खोज में हो। और जब तुम भौतिक स्तर पर आते हो तब विशेषकर वहाँ, प्रतिकूलताएं लगभग अपराजेय होंगी।

मैंने अपना आदर्श वाक्य बना रखा है : विजय या मृत्यु।

Evening talks with Sri Aurobindo, p.38 — श्रीअरविन्द

योग के लिए तैयारी

सबसे पहले,सचेतन बनना। हमलोग अपनी सत्ता के केवल एक नगण्य भाग के प्रति सचेतन रहते हैं, अधिकांश भाग के प्रति हमलोग अनभिज्ञ रहते हैं। यही निश्चेतना हमें अपनी पुरानी, अपुनरुज्जीवित प्रकृति के साथ बांधे रहती है और इसमें परिवर्तन तथा रूपान्तरण लाने में रुकावट डालती है। निश्चेतना के माध्यम से ही अदिव्य शक्तियाँ हमलोगों में प्रवेश करती हैं और हमें अपना दास बना लेती हैं। तुम्हें अपने प्रति सचेतन बनना है, तुम्हें अपनी प्रकृति तथा गतिविधियों के प्रति जाग्रत होना होगा, तुम्हें जानना होगा कि क्यों और कैसे तुम चीजों को करते हो या उन्हें महसूस करते हो या उनके बारे में सोचते हो, तुम्हें अपने अभिप्रायों तथा आवेगों को, उन गुप्त तथा प्रकट शक्तियों को जो तुम्हें चलाती हैं समझना होगा, वास्तव में तुम्हें अपनी सत्ता की सम्पूर्ण यन्त्र व्यवस्था के एक-एक भाग को देखना होगा। एक बार सचेतन हो जाने पर तुम चीजों में अन्तर समझ सकते हो, तुम उनकी छानबीन कर सकते हो। तुम यह देख सकते हो कि कौन-सी शक्तियाँ तुम्हें नीचे की ओर खींचती हैं और

कौन-सी ऊपर ले जाती हैं। और जब तुम उचित-अनुचित, सत्य-असत्य, दिव्य-अदिव्य में अन्तर समझ जाते हो तब तुम्हें अपने ज्ञान के अनुसार सख्ती से क्रिया करनी है। कहने का तात्पर्य यह है कि एक को दृढ़ता के साथ अस्वीकार कर दो और दूसरे को स्वीकार करो। हर कदम पर तुम्हें द्वन्द्व का सामना करना होगा और हर कदम पर तुम्हें चुनाव करना होगा। तुम्हें धैर्यवान, दृढ़ तथा सतर्क रहना होगा – 'जागरूक' जैसा कि गुरुओं का कथन है। तुम्हें हमेशा दिव्य के विरुद्ध अदिव्य को कोई भी मौका देने से इनकार करना होगा।

CWM 3:2 – श्रीमाँ

सर्वप्रथम तुम पुकार तथा अपनी आत्मा के उत्तर के प्रति सुनिश्चित हो जाओ। क्योंकि यदि पुकार सच्ची नहीं है, भगवान की शक्तियों का स्पर्श नहीं है या उसके सन्देशवाहकों की आवाज नहीं है बल्कि तुम्हारे अहंकार का प्रलोभन है तब तुम्हारे प्रयास का अन्त एक भारी आध्यात्मिक विफलता या एक गहरी विपत्ति में होगा।

यह कल्पना न करो कि पथ आसान है। यह मार्ग लम्बा, श्रमसाध्य, खतरनाक, कठिन है। प्रत्येक कदम पर एक घात है, हर मोड़ पर खाई है। हजारों दृश्य या अदृश्य शत्रु तेरे विरुद्ध खड़े होंगे तेरे अज्ञान के सामने सूक्ष्मता में भयानक, तेरी दुर्बलता के सामने शक्ति में भयानक। और जब कष्ट के साथ तुमने उन्हें नष्ट कर दिया है तब दूसरे हजारों उनके स्थान लेने के लिए प्रकट हो जायेंगे। नरक तुम्हारे विरोध में अपने झुण्ड के झुण्ड वमन करेगा, तुम्हें चारों ओर से घेर लेगा, घायल कर देगा, खतरे में डाल देगा। स्वर्ग के देवता निर्दयतापूर्वक तुम्हारी परीक्षा लेंगे और भावशून्य मुस्कान के साथ

मदद से इनकार कर देंगे। तुम्हें अकेले ही अपना सन्ताप झेलना होगा। भयानक असुर तेरा पथ रोकेंगे। ऊपर के देवगण तेरी मदद नहीं करेंगे। आदिम और शक्तिशाली, क्रूर, अपराजित असंख्य हैं अन्धकार की भयानक शक्तियाँ जो रात्रि और अज्ञान के राज्य से लाभ उठाती हैं और विरोध करती हैं। बहुत दूर रहनेवाली प्रकाश की एकान्त शक्तियाँ कुछेक ही हैं जो मदद करना चाहती हैं या मदद करने की जिन्हें अनुमति दी गई है और जो कभी-कभी ही आती हैं। हरेक अगला कदम एक युद्ध है। कितनी खड़ी ढालें हैं! अनगिनत आरोहण तथा उच्चतर शिखरों पर शिखरों को विजित करना पड़ता है। प्रत्येक पठार का आरोहण मार्ग का एक चरण है और इसके परे के अनगिनत आरोहणों को प्रकट करता है। प्रत्येक विजय जिसे तुम अन्तिम विजयमान संघर्ष समझते हो वह सैकड़ों भयानक और खतरनाक लड़ाइयों का पूर्वाभास मात्र सिद्ध होती है।... किन्तु तुम कहते हो कि भगवान का हाथ मेरे साथ है तथा भगवती माता अपनी मदद की कृपालु मुस्कान के साथ निकट हैं ? तब तुम जानते नहीं कि भगवान की कृपा पाना देवताओं के अमृत अथवा कुबेर के अमूल्य खजानों को प्राप्त करने की अपेक्षा अधिक कठिन है। उनके चुनिन्दों से पूछो और वे लोग तुम्हें बतायेंगे कि कितनी बार भगवान ने उनसे अपना मुहँ फेर लिया है, कितनी बार अपने रहस्यमय आवरण में वे छिप गये हैं और वे नरक की पकड़ में अकेले रह गये हैं, अन्धकार में असहाय, युद्ध के सन्ताप में असुरक्षित। और यदि उन्होंने आवरण के पीछे उनकी उपस्थिति महसूस भी की है तब भी वह बादलों के पीछे छिपे शरद ऋतु के सूर्य के समान मन्द रहती जो वर्षा, बर्फ, खतरनाक तूफान, झंझावात, कटु शीत, वातावरण के दुःखद धूसरपन तथा क्लान्त निष्प्रभता से रक्षा नहीं करती। निस्सन्देह

सहायता तब भी रहती है जब ऐसा लगता है कि वे पीछे हट गये हैं फिर भी पूर्ण रात्रि का आभास होता है जहाँ सूर्य नहीं होता और कालिमा को भेदने के लिए आशा की कोई किरण दिखाई नहीं पड़ती। भगवती माता का मुख सुन्दर है किन्तु वे भी कठोर और भयानक हो सकती हैं। नहीं, तब क्या अमरत्व एक खिलौना है जो बच्चे को मजाक में दे दिया जाये या दिव्य जीवन ऐसा पुरस्कार है जो प्रयास के बिना मिल जाये अथवा ऐसा राज मुकुट है जो दुर्बल व्यक्ति को दे दिया जाये। ठीक ढंग से प्रयास करो और तुझे यह मिल जायेगा। श्रद्धा बनाये रखो और अन्त में इसका औचित्य प्रमाणित हो जायेगा। किन्तु पथ का विधान भयानक है और इसे कोई मिटा नहीं सकता।

CWSA 12: 155 — श्रीअरविन्द

श्रीअरविन्द अपने विषय में कहते हैं

मेरा अपना जीवन तथा मेरा योग मेरे भारत-आगमन के समय से ही इहलौकिक तथा पारलौकिक, किसी भी एक के प्रति एकनिष्ठता के बिना, दोनों रहे हैं। सभी मानव-रुचियाँ, मैं समझता हूँ, इहलौकिक हैं तथा इनमें से अधिकांश मेरे मानसिक क्षेत्र में और कुछ, जैसे राजनीति, मेरे जीवन में प्रवेश कर चुके हैं। किन्तु साथ ही, जैसे ही मैंने बम्बई के अपोलो बन्दर में भारत की भूमि पर अपने कदम रखे, मुझे आध्यात्मिक अनुभूतियाँ होने लगीं। किन्तु ये अनुभूतियाँ इस संसार से अलग नहीं थीं बल्कि इसका इस पर आन्तरिक और अनन्त प्रभाव पड़ा, जैसे भौतिक स्थान में व्याप्त अनन्त की तथा भौतिक वस्तुओं तथा शरीरों में सर्वव्यापी के निवास की अनुभूति।

साथ ही, मैंने अपने आपको अति भौतिक विश्वों तथा लोकों में प्रवेश करते देखा जिसका प्रभाव भौतिक जगत पर पड़ा। इसलिए सृष्टि के दोनों छोरों के तथा उनके मध्य जो कुछ भी है उनके बीच कोई तीक्ष्ण अलगाव या असमाधेय विरोध मैंने नहीं पाया। मेरे लिए समस्त ब्रह्म है और मैं भगवान को सब जगह देखता हूँ। प्रत्येक को यह अधिकार है कि वह इहलौकिकता का त्याग कर दे और केवल पारलौकिकता का ही चुनाव करे। और यदि इससे उसे शान्ति प्राप्त हो जाती है तब वह बड़ा धन्य है।

मैंने व्यक्तिगत रूप से शान्ति पाने के लिए ऐसा करना आवश्यक नहीं समझा। मैंने अपने योग में भी अपने कार्यक्षेत्र में दोनों लोकों को – आध्यात्मिक तथा भौतिक – को समाविष्ट करने के लिए अपने आपको प्रेरित पाया और मनुष्यों के हृदय तथा पार्थिव जीवन में भागवत चेतना तथा भागवत शक्ति को स्थापित करने का प्रयास किया। यह मैंने केवल व्यक्तिगत मुक्ति के लिए नहीं बल्कि यहाँ दिव्य जीवन की स्थापना के लिए किया। यह मुझे उतना ही आध्यात्मिक उद्देश्य प्रतीत होता है जितना कोई और। तथा पार्थिव लक्ष्यों तथा पार्थिव वस्तुओं का जीवन के कार्यक्षेत्र में समावेश, जैसा कि मेरा विश्वास है, इसकी आध्यात्मिकता को कलंकित नहीं कर सकता अथवा इसकी भारतीय स्वरूप को परिवर्तित नहीं कर सकता। यही कम से कम मेरा हमेशा दृष्टिकोण तथा विश्व तथा वस्तुओं तथा भगवान की वास्तविकता तथा प्रकृति का अनुभव रहा है। यह मुझे उनके बारे में पूर्ण सत्य के यथासम्भव निकट प्रतीत हुआ और इसीलिए मैंने इसके अनुसरण को पूर्ण योग कहा है। प्रत्येक व्यक्ति, निस्सन्देह, इस प्रकार की समग्रता को इनकार करने और इसमें विश्वास न करने या पूर्ण पारलौकिकता की आध्यात्मिक आवश्यकता

में विश्वास करने के लिए स्वतन्त्र हैं। किन्तु इससे मेरे योग का अभ्यास असम्भव हो जायेगा। मेरा योग वास्तव में परलोकों, परमात्मा के लोक तथा मध्य के अन्य लोकों की सम्पूर्ण अनुभूति तथा हमारे जीवन तथा भौतिक जगत पर उनके सम्भव प्रभाव को समाविष्ट कर सकता है। किन्तु यह बिलकुल सम्भव होगा कि हम केवल परम सत्ता या ईश्वर के किसी एक पक्ष शिव, कृष्ण की जो जगत का प्रभु तथा हमारे और कार्यों का स्वामी है या अन्यथा वैश्व सच्चिदानन्द की सिद्धि पर आग्रह करें तथा इस योग के तात्विक परिणामों को उपलब्ध करें तथा तत्पश्चात उनसे आगे समग्र परिणामों की ओर बढ़ें यदि व्यक्ति दिव्य जीवन तथा भौतिक जीवन पर आत्मन की विजय के आदर्श को स्वीकार कर ले। इसी दृष्टिकोण तथा वस्तुओं और सृष्टि के सत्य की अनुभूति ने मुझे 'दिव्य जीवन' तथा 'सावित्री' लिखने में समर्थ बनाया। परम सत्ता, ईश्वर की सिद्धि निश्चय ही सारभूत वस्तु है किन्तु प्रेम और भक्ति के साथ उनके पास जाना, अपने कर्मों के द्वारा उनकी सेवा करना और उन्हें जानना भी – आवश्यक नहीं है कि बौद्धिक संज्ञान से जानें बल्कि आध्यात्मिक अनुभूति में – पूर्ण योग के पथ में अनिवार्य है।

CWSA 28: 121 – श्रीअरविन्द

***

एक दिन...

तथापि श्रद्धा को पुनः प्रज्वलित करते हम स्वयं से कहते हैं,
"ओह, निश्चय ही एक दिन हमारी पुकार सुन वह आयेगा,
एक दिन हमारे जीवन का करेगा वह नव निर्माण
और करेगा उच्चार शान्ति के चमत्कारी महामंत्र का
और पदार्थों की योजना में ले आयेगा परिपूर्णता।"

एक दिन वह जीवन और धरती पर होगा अवतरित,
शाश्वत के द्वारों की रहस्यमयता को त्याग
जगत में जो करता है पुकार उसकी मदद के लिए
और लायेगा वह सत्य जो आत्मा को कर देता है मुक्त
वह आनन्द जो है दीक्षा आत्मा की
वह शक्ति जो होगी फैली हुई भुजा प्रेम की।

एक दिन वह हटा लेगा अपने सौन्दर्य का भीषण आवरण
कर देगा आरोपित आनन्द जगत के धड़कते हृदय पर
और ज्योति व परमानन्द की अपनी गुह्य देह को कर देगा
अनावरित।

Savitri, p.200

— श्रीअरविन्द

ISBN No.: 978-81-7060-440-0
Rs. 100